जुलाई, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

cover ii

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2019 अंक - 7

प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक

अविनाश शुक्ला

(2019) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमिशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं, इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान भारत सरकार द्वारा नागरिकता कानून में प्रस्तावित संशोधनों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं । इन संशोधनों के माध्यम से भारत सरकार विस्थापित होकर आए हिंदुओं, सिखों, बौद्धों, जैनियों और ईसाइयों इत्यादि को भारत की नागरिकता प्रदान करने पर विचार कर रही है चाहे उनके पास नागरिकता प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ कोई भी दस्तावेजी अथवा अन्य साक्ष्य उपलब्ध न हो । इन प्रस्तावित संशोधनों की आवश्यकता को समझने के लिए इतिहास में जाना होगा । वर्ष 1947 में देश के विभाजन के समय पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मो. अली जिन्ना ने कहा था कि हम रंग और नस्ल के भेदभाव से परे देश बनाकर दिखाएंगे । जिन्ना ने अपने इसी वायदे को साबित करने के लिए स्वेच्छा से पाकिस्तान को अपना देश मानने वाले श्री जोगेन्द्र नाथ मंडल को मंत्रिमंडल में सम्मिलित किया और उनको विधि मंत्री बनाया । जिन्ना के इसी वायदे के कारण लाखों हिंदुओं और सिखों ने स्वेच्छा से पाकिस्तान में रहना स्वीकार किया । परंतु जिन्ना का यह वायदा असत्य साबित हुआ और पाकिस्तान में हिंदुओं और सिखों समेत सभी अल्पसंख्यकों के लिए अपनी संपत्ति, संस्कृति और परंपराएं ही नहीं बल्कि इज्जत की रक्षा करना भी मुश्किल होता गया और उनको शीघ्र ही हिंसा, लूट और जबरन धर्मांतरण का सामना करना पड़ा । श्री जोगेन्द्र नाथ मंडल 1940 के दशक में दलितों के बड़े नेता थे । वे बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा के विपरीत मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गए थे । देश के विभाजन के पश्चात् उन्हें पाकिस्तान

में विधि मंत्री और संविधान सभा का सदस्य भी बनाया गया । परंतु वे भी अपने दलित समुदाय के लोगों के साथ धर्म के नाम पर होने वाली बर्बरता के समक्ष असहाय हो गए और अंतत: उनको मजबूर होकर तारीख 8 अक्तूबर, 1950 को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देना पड़ा । इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि मैं काफी विचार-विमर्श के उपरांत इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि पाकिस्तान में हिंदुओं का कोई भविष्य नहीं है और इस देश में अल्पसंख्यकों के विरुद्ध दमन की राजनीति के कारण उनके लिए अंधकार ही रहेगा । अंतत: उन्हें भारत लौटना पड़ा लेकिन यहां भी उन्हें अपमान का सामना करना पड़ा क्योंकि लोगों ने उन्हें गद्दार करार दिया और वे गुमनामी के अंधेरे में ही चल बसे । पाकिस्तान के संविधान के अनुच्छेद 91 में स्पष्ट लिखा है कि वहां का प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति होने के लिए मुस्लिम धर्म का अनुयायी होना आवश्यक है और कोई हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन या ईसाई वहां पर प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति के पद पर सुशोभित नहीं हो सकता । पाकिस्तान में धार्मिक अल्पसंख्यकों की बदतर हालत पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू और पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान के बीच वार्ता भी हुई थी और दोनों नेताओं के बीच तारीख 8 अप्रैल, 1950 को एक समझौता हुआ था । इस समझौते के अंतर्गत दोनों देशों ने अपने यहां के अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का वचन दिया था । परंतु वर्तमान में पाकिस्तान में मात्र एक प्रतिशत धार्मिक अल्पसंख्यक शेष रह गए हैं । कराची जैसा शहर, जहां 51 प्रतिशत हिंदू और अन्य गैर मुस्लिम थे, वर्तमान में 1 प्रतिशत से भी कम हैं । पाकिस्तान के सभी धार्मिक अल्पसंख्यक विस्थापित होकर भारत आते हैं और भारत का यह कर्तव्य है कि उनको नागरिकता प्रदान करे । इसी कारणवश वर्तमान सरकार जिस नागरिकता कानून की बात कर रही है उसका मकसद समझ में आता है ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अब्दुल रशीद **बनाम** रक्कम्मल	114
ऊषा देवी (श्रीमती) **बनाम** नागेन्द्र साह	18
कटिरप्पन और एक अन्य **बनाम** वैजयंतीमाला और एक अन्य	109
जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य **बनाम** भोला राम शर्मा	59
झुंखरु राम और अन्य **बनाम** मोही राम और अन्य	134
प्रियंका श्रीवास्तव (श्रीमती) **बनाम** बिपिन बिहारी लाल	102
बाबूभाई माकनभाई पटेल **बनाम** गुजरात राज्य	13
बी. टी. अगाशे **बनाम** श्रीमती आशा देवी शर्मा	52
भक्तवत्सल सिंह राजपूत **बनाम** श्रीमती वंदना राजपूत	28
मीना कुमारी **बनाम** सोहन लाल	125
रश्मि सिंह (श्रीमती) **बनाम** अरुण कुमार सिंह	70
राजेश कुमार चन्द्र **बनाम** श्रीमती सविता चन्द्र	36
शहज़ाद हसन **उर्फ** आज़ाद हसन और अन्य **बनाम** मोहम्मद मुस्तफ़ा और अन्य	1
सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा (डा.) **बनाम** राज्य और अन्य	94

संसद् के अधिनियम

पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 - 33

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 13(1)(i) और 14 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 497 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1, नियम 10(2)] – पत्नी द्वारा जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद का आवेदन – न्यायालय द्वारा जारकर्म में संलिप्त व्यक्ति को आवश्यक पक्ष मानते हुए मामले का पक्ष बनाए जाने के लिए आदेश पारित किया जाना – यदि न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के साथ जारकर्म किया है तो न्यायालय कार्यवाही में जारकर्म करने वाले व्यक्ति को संयोजित किया जाना न्यायसंगत होगा – जारकर्म करने वाला विवाह-विच्छेद के लिए फाइल किए गए आवेदन में उचित पक्ष होता है ।

भक्तवत्सल सिंह राजपूत बनामपूत **श्रीमती वंदना राजपूत** 28

गुजरात भू-राजस्व संहिता, 1879 (1879 का 5)

– धारा 135ख और 135ग – अधिकारों का अभिलेख – नामांतरण – अधिकार अभिलेखों में नामांतरण-प्रविष्टियों के संबंध में विवाद – सिविल न्यायालय में हक के संबंध में वाद का लंबन – अधिकार-अभिलेखों में प्रविष्टियां या नामांतरण संपत्ति में कोई अधिकार, हक़ या हित प्रदत्त नहीं करता – सिविल वाद में अंतिम निर्णय के अध्यधीन अधिकारों के अभिलेख को ठीक किया जाना चाहिए ।

बाबूभाई माकनभाई पटेल बनाम **गुजरात राज्य** 13

पृष्ठ संख्या

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 5 [सपठीत लैटर्स पेटेंट (जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय) का खंड 12] – लैटर्स पेटेंट अपील फाइल किए जाने में 468 दिनों के विलंब को क्षमा किए जाने के लिए आवेदन – यह तथ्य कि मामले को सरकार के विधि विभाग को उनकी राय अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट किया गया था और मामले पर सरकार के विभिन्न प्रक्रमों पर विचार किया गया था, जिस कारणवश विलंब कारित हुआ – सरकारी निकायों और उनके अभिकरणों और माध्यमों को इस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि उनको विलंब के लिए युक्तिसंगत और स्वीकार्य स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा और उनको सद्भावी प्रयासों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा – उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रायिक स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि फाइल अनेक माह/वर्षों तक प्रक्रिया में अंतर्वलित लालफीताशाही के कारण लंबित बनी रही ।

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम **भोला राम शर्मा** 59

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 228 और 276 – विल का प्रोबेट – मंजूरी – आवेदक द्वारा वसीयत-कर्ता द्वारा निष्पादित विल की अधिप्रमाणित प्रति और वसीयत-कर्ता का मृत्यु प्रमाणपत्र सबूत में पेश किया जाना – निष्पादक द्वारा यह भी साबित किया जाना कि उसके द्वारा प्रस्तुत विल वसीयत-कर्ता की अंतिम विल है – आवेदक के हक़ में प्रोबेट मंजूर किया जाना चाहिए ।

सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा (डा.) बनाम **राज्य और अन्य** 94

पृष्ठ संख्या

– धारा 291 – प्रशासनिक बंधपत्र – दाखिल करने की अपेक्षा – आवेदक विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी उल्लिखित किया जाना – आवेदक प्रतिभू सहित प्रशासन बंधपत्र दाखिल करने से अभिमुक्ति पाने का हक़दार है ।

सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा (डा.) बनाम **राज्य और अन्य** 94

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 90 – तीस वर्ष से अधिक पुराना दस्तावेज़ – साबित न करने की अपेक्षा – यह कहा जाना कि दस्तावेज़ अर्थात् विक्रय विलेख विक्रेता द्वारा ऋणों को चुकाने के लिए निष्पादित किया गया था – दावाकर्ता द्वारा न तो मूल विक्रय विलेख और न ही बंधक विलेख साक्ष्य में पेश किया जाना – ऐसी स्थिति में मात्र विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति के संबंध में 30 वर्ष पुराना होने की कानूनी उपधारणा नहीं की जा सकती ।

अब्दुल रशीद बनाम **रक्कम्मल** 114

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 16(ग) – वादान्तर्गत संपत्ति के विक्रय हेतु करार – क्रेता द्वारा विक्रय-विलेख के निष्पादन के लिए अपनी तैयारी और रज़ामन्दी उपदर्शित करते हुए विक्रेता को सूचना जारी की जानी – विक्रेता द्वारा विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए कोई कार्रवाई न की जानी – विक्रेता ने अपने भाग के पालन के लिए अपेक्षा

पृष्ठ संख्या

को पूरा कर दिया है – अत: वह विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हक़दार है ।

शहज़ाद हसन उर्फ **आज़ाद हसन और अन्य** बनाम **मोहम्मद मुस्तफ़ा और अन्य** 1

– धारा 19(ख) – विक्रेता द्वारा क्रेता के हक़ में संपत्ति विक्रीत करने के लिए रजिस्ट्रीकृत करार – बाद में विक्रेता द्वारा अन्य व्यक्तियों के हक़ में संपत्ति का अंतरण – क्रेताओं द्वारा सद्भाविक क्रेता होने की दलील – क्रेताओं द्वारा पूर्वतर करार की जानकारी न होने का कथन किया जाना – चूंकि पूर्वतर करार एक रजिस्ट्रीकृत करार था इसलिए पश्चात्वर्ती क्रेता पूर्वतर करार की जानकारी न होने का दावा नहीं कर सकते – अत: पश्चात्वर्ती विक्रय के अधीन क्रेता सद्भाविक क्रेता होने का फायदा नहीं ले सकते ।

शहज़ाद हसन उर्फ **आज़ाद हसन और अन्य** बनाम **मोहम्मद मुस्तफ़ा और अन्य** 1

– धारा 20 – संपत्ति के विक्रय हेतु रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार – क्रेता द्वारा अपनी तैयारी और रज़ामन्दी उपदर्शित करते हुए विक्रेता को नोटिस जारी किया जाना – विक्रेता द्वारा संपत्ति भिन्न व्यक्तियों को विक्रीत की जानी – विक्रेता द्वारा तीन वर्ष की अवधि की प्रतीक्षा किए बिना संपत्ति का भिन्न व्यक्तियों के हक़ में अंतरण – ऐसा अंतरण सद्भाविक अंतरण नहीं कहा जा सकता – पूर्वतर क्रेता संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पाने का हकदार है ।

शहज़ाद हसन उर्फ **आज़ाद हसन और अन्य** बनाम **मोहम्मद मुस्तफ़ा और अन्य** 1

पृष्ठ संख्या

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 62 – भोगाधिकार के साथ कृषि भू-संपत्ति का बंधक – प्रतिवादियों के पूर्व-उत्तराधिकारी द्वारा जमाबंदी में अपने नाम की प्रविष्टि कराया जाना – बंधक कर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा बंधक धन के संदाय के लिए इच्छा जाहिर करते हुए संपत्ति के मोचन के लिए वाद – मोचन में किसी प्रकार की कोई बाधा उपदर्शित न की जानी – बंधक कर्ता वाद संपत्ति का मोचन कराने का हक़दार है ।

झुंखरु राम और अन्य बनाम **मोही राम और अन्य** 134

– धारा 111 – किराएदारी – किराएदारी परिसर पट्टे पर लिया जाना – किराएदार द्वारा संपत्ति के मालिक को अग्रिम रूप में 50,000/- रुपए की धनराशि दो किस्तों में दी जानी – किराएदार को सरकार से संस्था खोलने की अनुमति न दी जानी – किराएदार द्वारा अग्रिम धनराशि की वापसी के लिए वाद – संपत्ति मालिक की 56,000/- रुपए की किराए की धनराशि किराएदार पर बकाया होना – किराएदार अग्रिम धनराशि को वापस पाने का हक़दार नहीं है ।

बी. टी. अगाशे बनाम **श्रीमती आशा देवी शर्मा** 52

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 26, नियम 9 – विभाजन के लिए वाद – बैंक लॉकर में रखी वस्तुओं की सूची बनाने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त नियुक्त करने के लिए अंतरिम आवेदन – प्रतिवादी द्वारा मामले को विलंबित करने का कथन करते हुए विरोध किया जाना – निचले न्यायालय

पृष्ठ संख्या

द्वारा लॉकर में रखे गए दस्तावेजों के निर्देश में न कि आभूषणों के निर्देश में आवेदन भागत: मंजूर किए जाने में कोई अनियमितता नहीं है – अत: पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

कटिरप्पन और एक अन्य बनाम **वैजयंतीमाला और एक अन्य** 109

– धारा 11 [संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 4(2) और 25] – बच्चे की संरक्षकता – पिता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष निरोधाधीन बच्चे को न्यायालय के समक्ष पेश कराने के लिए आवेदन – खारिजी – पिता द्वारा संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन सिविल न्यायालय के समक्ष आवेदन – माता द्वारा पूर्व-न्याय के अधीन वर्जन का अभिकथन – विधिमान्यता – पूर्व-न्याय का सिद्धांत केवल वहां लागू होगा जहां उक्त धारा के अधीन अपेक्षाएं पूरी होती हों – चूंकि पिता को संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन दावा दायर करने का अधिकार है अत: ऐसे किसी मामले में पूर्व-न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होगा ।

प्रियंका श्रीवास्तव (श्रीमती) बनाम **बिपिन बिहारी लाल** 102

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 9 – पति द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा पति और उसके कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा दहेज के लिए प्रताड़ित करने और क्रूरता बरतने का कथन किया जाना – पत्नी

पृष्ठ संख्या

द्‌वारा पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के अपराधों के लिए रिपोर्ट दर्ज कराई जानी – पति द्‌वारा इस कथन के समर्थन में कोई साक्ष्य पेश न किया जाना कि उसने पत्नी को अपने घर वापस लाने के लिए कोई गंभीर प्रयास किया था – पत्नी द्‌वारा पति के साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त कारण है – पति दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री पाने का हक़दार नहीं है ।

मीना कुमारी बनाम **सोहन लाल** 125

– धारा 13(i-क) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – वादी-पति द्‌वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता का अभिकथन – वादी द्‌वारा यह कथन किया जाना कि पत्नी ने उस पर हमला किया था और उसके गुप्तांग पर लात मारी थी – पति द्‌वारा किए गए अभिकथनों को अकाट्य साक्ष्य द्‌वारा साबित न किया जाना – मात्र सामान्य अभिकथनों के आधार पर पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हक़दार नहीं है – ऐसे अभिकथनों को अकाट्य और विनिर्दिष्ट साक्ष्य द्‌वारा साबित किया जाना चाहिए ।

राजेश कुमार चन्द्र बनाम **श्रीमती सविता चन्द्र** 36

– धारा 13(i-ख) – अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध – वादी-पति द्‌वारा यह अभिकथन किया जाना कि पत्नी बार-बार मायके चली जाती थी – पति द्‌वारा तारीख़ और समय का उल्लेख न किया जाना – पत्नी द्‌वारा एक साथ रहने के दौरान दो बार गर्भ धारण करना – वाद पत्नी

पृष्ठ संख्या

के मायके जाने के एक वर्ष के पश्चात् फाइल किया जाना – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हक़दार नहीं है ।

राजेश कुमार चन्द्र बनाम **श्रीमती सविता चन्द्र** 36

– धारा 13(1)(i-क) और (i-ख) – क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराया जाना – पति और पत्नी द्वारा पर्याप्त अवधि से पृथक्-पृथक् रहना – विधिक सहायता समिति द्वारा मध्यक्षेप के प्रयास विफ़ल होना – पत्नी द्वारा पति को लिखे गए पत्रों से यह उपदर्शित होना कि पत्नी ने स्वेच्छा से पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था – पति द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल अर्जी के जवाब में भी पत्नी द्वारा पति के साथ जाने से इनकार किया जाना – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है ।

रश्मि सिंह (श्रीमती) बनाम **अरुण कुमार सिंह** 70

– धारा 13(1)(i-ख) – पति द्वारा अधित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल किया जाना – पति द्वारा यह कथन किया जाना कि उसकी पत्नी लगभग 17 वर्षों से अपने माता-पिता के घर पर रह रही है – पति द्वारा अधित्यजन का अभिवाक् साबित करने में विफ़लता – मात्र यह आधार कि पत्नी 17 वर्षों से अपने मायके में रह रही है, विवाह-विघटन के लिए पर्याप्त नहीं है – पति को

पृष्ठ संख्या

अधित्यजन के तथ्य के साथ समर्पण के आशय को भी साबित करना चाहिए – अन्यथा पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हक़दार नहीं होगा ।

ऊषा देवी (श्रीमती) बनाम **नागेन्द्र साह** 18

शहज़ाद हसन उर्फ **आज़ाद हसन और अन्य**

बनाम

मोहम्मद मुस्तफ़ा और अन्य

(2016 की द्वितीय अपील सं. 188)

तारीख़ 5 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति सुधांशू धूलिया

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 16(ग) – वादान्तर्गत संपत्ति के विक्रय हेतु करार – क्रेता द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए अपनी तैयारी और रज़ामन्दी उपदर्शित करते हुए विक्रेता को सूचना जारी की जानी – विक्रेता द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कोई कार्रवाई न की जानी – विक्रेता ने अपने भाग के पालन के लिए अपेक्षा को पूरा कर दिया है – अत: वह विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हक़दार है ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 19(ख) – विक्रेता द्वारा क्रेता के हक़ में संपत्ति विक्रीत करने के लिए रजिस्ट्रीकृत करार – बाद में विक्रेता द्वारा अन्य व्यक्तियों के हक़ में संपत्ति का अंतरण – क्रेताओं द्वारा सद्भाविक क्रेता होने की दलील – क्रेताओं द्वारा पूर्वतर करार की जानकारी न होने का कथन किया जाना – चूंकि पूर्वतर करार एक रजिस्ट्रीकृत करार था इसलिए पश्चात्वर्ती क्रेता पूर्वतर करार की जानकारी न होने का दावा नहीं कर सकते – अत: पश्चात्वर्ती विक्रय के अधीन क्रेता सद्भाविक क्रेता होने का फायदा नहीं ले सकते ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 20 – संपत्ति के विक्रय हेतु रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार – क्रेता द्वारा अपनी तैयारी और रज़ामन्दी उपदर्शित करते हुए विक्रेता को नोटिस जारी किया जाना –

विक्रेता द्वारा संपत्ति भिन्न व्यक्तियों को विक्रीत की जानी – विक्रेता द्वारा तीन वर्ष की अवधि की प्रतीक्षा किए बिना संपत्ति का भिन्न व्यक्तियों के हक़ में अंतरण – ऐसा अंतरण सद्भाविक अंतरण नहीं कहा जा सकता – पूर्वतर क्रेता संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए डिक्री पाने का हकदार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि मोहम्मद मुस्तफ़ा और इरफ़ान आपस में सगे भाई हैं । दोनों भाइयों अर्थात् मोहम्मद मुस्तफ़ा और इरफ़ान के बीच तारीख 17 फरवरी, 1982 को एक विक्रय करार हुआ था जिसके अधीन इरफ़ान संपत्ति में अपना भाग 90,000/- रुपए के हक़ में विक्रीत करने के लिए तैयार हुआ था । करार के निबंधनों से यह प्रकट होता है कि उस तारीख को जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था, मोहम्मद मुस्तफ़ा द्वारा इरफान को 30,000/- (तीस हजार) रुपए की धनराशि दी गई थी । यह भी उल्लेखनीय है कि करार उसी दिन अर्थात् तारीख़ 17 फरवरी, 1982 को रजिस्ट्रीकृत हुआ था । इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि करार का कुल प्रतिफल 90,000/- (केवल नब्बे हजार) रुपए था । इरफान को 30,000/- रुपए की धनराशि विक्रय करार के निष्पादन के समय दी गई थी और शेष 60,000/- रुपए की धनराशि तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 को दी जानी थी जिस तारीख़ को इरफान द्वारा अपने भाई मोहम्मद मुस्तफ़ा के हक़ में विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था । अभिलेख पर यह आया है कि तारीख 30 अप्रैल, 1985 से पूर्व जब विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था, मोहम्मद मुस्तफा (अर्थात् वादी) द्वारा अपने भाई इरफान (अर्थात् प्रतिवादी सं. 1) को यह कहते हुए सूचना भेजी गई थी कि वह विक्रय विलेख निष्पादित कराने और शेष धनराशि का संदाय करने के लिए तैयार और रज़ामन्द है और इसलिए इरफान को विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए आना चाहिए । यह स्वीकृत तथ्य है कि इरफान नियत स्थान पर विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कभी भी उपस्थित नहीं हुआ । इसी दौरान इरफान ने तारीख़ 1 अक्तूबर, 1985 को संपत्ति में अपना भाग शहज़ाद हसन, आबाद हसन और जमील अहमद के हक़ में विक्रीत कर दिया जो निचले न्यायालय के समक्ष क्रमश: प्रतिवादी सं. 2,

3 और 4 थे । इरफान ने निचले न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए अपने लिखित कथन में यह स्वीकार किया है कि उसने विक्रय करार के समय अग्रिम धन के रूप में 30,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की थी । तथापि, उसने यह कथन किया कि प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने कपट करके अपने हक़ में विक्रय विलेख निष्पादित कराया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने यह कथन किया कि वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता हैं क्योंकि उन्हें दोनों भाइयों अर्थात् मोहम्मद मुस्तफा और इरफान के बीच हुए विक्रय करार के बारे में पता नहीं था । वर्तमान द्वितीय अपील प्रतिवादियों द्वारा फाइल की गई है । विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वादी का वाद तारीख़ 30 मई, 1996 को डिक्री किया गया था और उक्त आदेश के विरुद्ध प्रतिवादियों की अपील तारीख़ 4 अक्तूबर, 2016 को खारिज की गई थी । प्रतिवादियों ने उक्त आदेशों से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बारे में विचारण न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि वादी सदैव ही संविदा के अपने भाग के पालन के लिए तैयार और रज़ामन्द रहा था । इस तथ्य को साबित करने के लिए पुख्ता साक्ष्य मौजूद है क्योंकि वादी द्वारा तारीख 9 अप्रैल, 1985 को प्रतिवादी सं. 1 को स्पष्ट रूप से यह कहते हुए सूचना (नोटिस) जारी किया गया था कि वह विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए तैयार और रज़ामन्द है । (पैरा 12)

इस संबंध में यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वह एकमात्र तथ्य जिसके द्वारा प्रतिवादी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की परिधि के अन्तर्गत आ सकते हैं, यह है कि वे यह उपदर्शित कर सकें कि वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता हैं और उन्हें पूर्वतर विक्रय करार के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । तथापि, यह सही नहीं है । इस बारे में ऊपर निर्दिष्ट धारा 3 के स्पष्टीकरण-I के अधीन विधि द्वारा गंभीर उपधारणा की गई है । यह स्वीकृत तथ्य है कि चूंकि यह एक रजिस्ट्रीकृत करार था, इसलिए विधि में यह उपधारित किया जाएगा कि प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 को पूर्वतर संविदा की जानकारी थी ।

दूसरे शब्दों में वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता नहीं हैं । (पैरा 14)

जहां तक विधि के तीसरे सारभूत प्रश्न का संबंध है, प्रतिवादी सं. 1 इरफान के लिए यह आवश्यक था कि वह तीन वर्ष की अवधि तक प्रतीक्षा करता जो कि किसी वाद को संस्थित करने के लिए विधि के अधीन परिसीमावधि थी और ऐसा न करके इरफान ने जोखिम लिया था और प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने तारीख़ 1 अक्तूबर, 1985 के विक्रय विलेख के लिए स्वयं को पक्षकार बनाया क्योंकि यह विलेख तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से तीन वर्षों के भीतर किया गया था । विधि यह उपबंध करती है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद तीन वर्ष की अवधि के भीतर संस्थित किया जा सकता है । यह तीन वर्ष की अवधि वाद हेतुक उत्पन्न होने की तारीख़ से आरंभ होती है जो कि तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से आरंभ होगी । अत: मोहम्मद मुस्तफ़ा के पास इरफान के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद फाइल करने के लिए तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से तारीख़ 30 अप्रैल, 1988 तक का समय था । तीन वर्ष तक प्रतीक्षा न करके इरफान और प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने स्वयं को मुकदमेदारी में उलझा लिया । विधि के इस सारभूत प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया जाता है । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए यह एतद्द्वारा खारिज की जाती है । (पैरा 15 और 16)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की द्वितीय अपील सं. 188.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एम. एस. त्यागी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री बी. सी. पांडे और तपन सिंह

न्यायमूर्ति सुधांशू धूलिया – वर्तमान द्वितीय अपील प्रतिवादियों द्वारा फाइल की गई है । विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वादी का वाद तारीख़ 30 मई, 1996 को डिक्री किया गया था और उक्त आदेश के विरुद्ध प्रतिवादियों की अपील तारीख़ 4 अक्तूबर, 2016 को खारिज की गई थी । प्रतिवादियों ने उक्त आदेशों से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है ।

2. इस न्यायालय की एक समन्वय न्यायपीठ ने तारीख़ 30 नवंबर, 2016 को विधि के तीन सारभूत प्रश्न विरचित किए जो इस प्रकार हैं :-

"1. क्या दोनों निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की गलती की है कि वादी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ख) के अधीन यथा अपेक्षित संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामन्द रहा है ?

2. क्या दोनों निचले न्यायालयों ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 19(ख) के संरक्षण का फायदा न देकर कोई सारभूत अवैधता कारित की है क्योंकि अपीलार्थी विवादित संपत्ति के अल्प भाग के प्रतिफल के साथ सद्भाविक क्रेता है और तारीख़ 17 फरवरी, 1982 के विक्रय करार के संबंध में सूचना नहीं दी गई है ?

3. क्या श्री इरफ़ान के लिए यह आवश्यक था कि वह हमारे समक्ष के अपीलार्थियों के हक़ में किसी अन्य विक्रय विलेख का निष्पादन करने से पूर्व तारीख़ 3 अप्रैल, 1985 (तारीख़ 21 जुलाई, 1982 के करार के निबंधनों में विक्रय विलेख के निष्पादन की आख़री तारीख़) के पश्चात् पूरे तीन वर्षों के लिए प्रतीक्षा करता ?"

3. अपीलार्थी-प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल श्री एम. एस. त्यागी और वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री बी. सी. पांडे को जिनकी सहायता तपन सिंह अधिवक्ता ने की, सुना गया ।

4. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि मोहम्मद मुस्तफ़ा और इरफ़ान आपस में सगे भाई हैं । दोनों भाइयों अर्थात् मोहम्मद मुस्तफ़ा और इरफ़ान के बीच तारीख 17 फरवरी, 1982 को एक विक्रय करार हुआ था जिसके अधीन इरफ़ान संपत्ति में अपना भाग 90,000/- रुपए के हक़ में विक्रीत करने के लिए तैयार हुआ था । करार के निबंधनों से यह प्रकट होता है कि उस तारीख को जब विक्रय करार निष्पादित किया गया था, मोहम्मद मुस्तफ़ा द्वारा इरफान को 30,000/- (तीस हजार) रुपए की धनराशि दी गई थी । यह भी उल्लेखनीय है कि करार उसी दिन अर्थात् तारीख़ 17 फरवरी, 1982 को रजिस्ट्रीकृत हुआ था ।

5. इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि करार का कुल प्रतिफल 90,000/- (केवल नब्बे हजार) रुपए था । इरफान को 30,000/- रुपए की धनराशि विक्रय करार के निष्पादन के समय दी गई थी और शेष 60,000/- रुपए की धनराशि तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 को दी जानी थी जिस तारीख़ को इरफान द्वारा अपने भाई मोहम्मद मुस्तफ़ा के हक़ में विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था । अभिलेख पर यह आया है कि तारीख 30 अप्रैल, 1985 से पूर्व जब विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना था, मोहम्मद मुस्तफा (अर्थात् वादी) द्वारा अपने भाई इरफान (अर्थात् प्रतिवादी सं. 1) को यह कहते हुए सूचना भेजी गई थी कि वह विक्रय विलेख निष्पादित कराने और शेष धनराशि का संदाय करने के लिए तैयार और रज़ामन्द है और इसलिए इरफान को विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए आना चाहिए । यह स्वीकृत तथ्य है कि इरफान नियत स्थान पर विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कभी भी उपस्थित नहीं हुआ । इसी दौरान इरफान ने तारीख़ 1 अक्तूबर, 1985 को संपत्ति में अपना भाग शहज़ाद हसन, आबाद हसन और जमील अहमद के हक़ में विक्रीत कर दिया जो निचले न्यायालय के समक्ष क्रमशः प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 थे । इरफान ने निचले न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए अपने लिखित कथन में यह स्वीकार किया है कि उसने विक्रय करार के समय अग्रिम धन के रूप में 30,000/- रुपए की धनराशि प्राप्त की थी । तथापि, उसने यह कथन किया कि प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने कपट करके अपने हक़ में विक्रय विलेख निष्पादित कराया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने यह कथन किया कि वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता हैं क्योंकि उन्हें दोनों भाइयों अर्थात् मोहम्मद मुस्तफा और इरफान के बीच हुए विक्रय करार के बारे में पता नहीं था ।

6. प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 की ओर से यह दलील दी गई है कि यदि बहस के लिए यह मान भी लिया जाए कि कोई विक्रय करार मौजूद था, तो भी तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 के करार के अनुसार विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए अवधि समाप्त हो गई थी । इरफान द्वारा

प्रतिवादी सं. 2 से 4 के हक़ में विक्रय विलेख का निष्पादन तारीख़ 1 अक्तूबर, 1985 के लगभग 5 मास के पश्चात् निष्पादित किया गया था । चूंकि वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता हैं इसलिए वे विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 19(ख) का फायदा पाने के हकदार हैं क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुपालन की संविदा का उनके विरुद्ध प्रवर्तन नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्होंने न केवल सद्भाविक आशय से संपत्ति के मूल्य का संदाय किया है अपितु उन्हें मूल संविदा की जानकारी भी नहीं थी । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"(1) क्या प्रतिवादी सं. 1 ने विवादित संपत्ति को 90,000/- रुपए के विक्रय प्रतिफल पर विक्रीत करने के लिए तारीख़ 17 फरवरी, 1982 को एक विधिमान्य करार निष्पादित किया था और अग्रिम धन के रूप में 30,000/- रुपए धनराशि प्राप्त की थी ? यदि हां तो इसका प्रभाव ?

(2) क्या वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रज़ामन्द है ?

(3) क्या प्रतिवादी सं. 2 से 4 सूचना के बिना संपत्ति के समुचित मूल्य का संदाय करने के पश्चात् संपत्ति के कुछ भाग के क्रय के लिए सद्भाविक क्रेता हैं ? यदि हां तो इसका प्रभाव ?

(4) क्या प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रतिवादी सं. 2 से 4 के हक़ में विक्रय विलेख कपट द्वारा किया गया है ? यदि हां तो इसका प्रभाव ?

(5) क्या तारीख़ 17 फरवरी, 1985 को प्रतिवादी सं. 1 अप्राप्तवय था, जैसा कि प्रतिवादी सं. 2 से 4 द्वारा लिखित कथन के पैरा 21 में कहा गया है ?

(6) अनुतोष ?"

7. विवाद्यक सं. 4 के सिवाय जो यह था कि क्या प्रतिवादी सं. 1 और शेष प्रतिवादियों के बीच संविदा कपटपूर्वक और प्रतिफल के बिना निष्पादित की गई थी, अन्य सभी विवाद्यक वादी के हक़ में विनिश्चित

किए गए । यह निष्कर्ष निकाला गया था कि यह संविदा कपटपूर्वक न होकर प्रतिफल के आधार पर की गई थी । तथापि, निष्कर्ष पर संपूर्ण रूप में विचार किया जाना चाहिए क्योंकि इस विनिर्दिष्ट विवाद्यक सं. 3 के संबंध में यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने संपत्ति स्वीकृतत: इस बारे में जानकारी रखते हुए क्रय की थी कि प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में पहले ही विक्रय करार किया जा चुका था जो कि रजिस्ट्रीकृत करार है ।

8. जहां संपत्ति का कोई करार रजिस्ट्रीकृत हो जाता है वहां संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 का स्पष्टीकरण-I तुरन्त प्रवर्तन में आ जाता है जिसमें यह उपधारित किया गया है कि इसकी सभी संबंधित पक्षकारों को जानकारी हो जाती है । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 3 इस प्रकार है :-

"3. **निर्वचन खंड** – इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात विरुद्ध न हो, –

"स्थावर संपत्ति" के अन्तर्गत खड़ा काष्ठ, उगती फसलें या घास नहीं आती ;

"लिखत" से अवसीयती लिखित अभिप्रेत है ;

किसी लिखत के संबंध में "अनुप्रमाणित" से ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित अभिप्रेत है और सर्वदा अभिप्रेत रहा होना समझा जाएगा जिनमें से हर एक ने निष्पादक को लिखत पर हस्ताक्षर करते या अपना चिह्न लगाते देखा है या निष्पादक की उपस्थिति में और उसके निदेश द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को लिखत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या निष्पादक से उसके अपने हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति पाई है, और जिनमें से हर एक ने निष्पादक की उपस्थिति में लिखत पर हस्ताक्षर किए हैं, किन्तु यह आवश्यक न होगा कि ऐसे साक्षियों में से एक से अधिक एक ही समय उपस्थित रहे हों और अनुप्रमाणन का कोई विशिष्ट प्ररूप आवश्यक न होगा ;

"रजिस्ट्रीकृत" से ऐसे किन्हीं राज्यक्षेत्रों के, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, किसी भी भाग में दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण को विनियमित करने वाली तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत अभिप्रेत है ;

"भूबद्ध" से अभिप्रेत है –

(क) भूमि में मूलित, जैसे पेड़ और झाड़ियां ;

(ख) भूमि में निविष्ट, जैसे भित्तियां या निर्माण ; अथवा

(ग) ऐसी निविष्ट वस्तु से इसलिए बद्ध कि जिससे यह बद्ध है उसका स्थायी फायदाप्रद उपभोग किया जा सके ;"

"अनुयोज्य दावे" से स्थावर संपत्ति के बन्धक द्वारा या जंगम संपत्ति के आडमान या गिरवी द्वारा प्रतिभूत ऋण से भिन्न किसी ऋण का या उस जंगम संपत्ति में, जो दावेदार के वास्तविक या आन्वयिक कब्जे में नहीं है, फायदाप्रद हित का ऐसा दावा अभिप्रेत है, जिसे सिविल न्यायालय अनुतोष देने के लिए आधार प्रदान करने वाला मानता हो चाहे ऐसा ऋण या फायदाप्रद हित वर्तमान, प्रोद्भवमान, सशर्त या समाश्रित हो ;"

किसी तथ्य की "किसी व्यक्ति को सूचना है" यह तब कहा जाता है, जब वह वास्तव में उस तथ्य को जानता है, अथवा यदि ऐसी जांच या तलाश, जो उसे करनी चाहिए थी, करने से जानबूझकर प्रविरत न रहता या घोर उपेक्षा न करता, तो वह उस तथ्य को जान लेता ।

स्पष्टीकरण 1 – जहां कि स्थावर संपत्ति से संबंधित कोई संव्यवहार रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया जाना विधि द्वारा अपेक्षित है, और वह रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया गया है वहां यह समझा जाएगा कि ऐसे व्यक्ति को, जो ऐसी संपत्ति को या ऐसी संपत्ति के किसी भाग या ऐसी संपत्ति में किसी अंश या हित को अर्जित करता है, ऐसी लिखत की सूचना उस तारीख से है,

जिस तारीख को रजिस्ट्रीकरण हुआ है, या जहां कि एक ही उपजिले में सब संपत्ति स्थित नहीं है या जहां कि रजिस्ट्रीकृत लिखत भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) की धारा 30 की उपधारा (2) के अधीन रजिस्ट्रीकृत की गई है, वहां उस पूर्वतम तारीख से है, जिसको ऐसे रजिस्ट्रीकृत लिखत का कोई ज्ञापन उस उपरजिस्ट्रार के पास फाइल किया गया है जिसके उपजिले में उस संपत्ति को, जो अर्जित की जा रही है या उस संपत्ति का, जिसमें अंश या हित अर्जित किया जा रहा है, कोई भाग स्थित है :

परन्तु यह तब जबकि –

(1) उस लिखत का रजिस्ट्रीकरण और उसके रजिस्ट्रीकरण की पूर्ति भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) द्वारा और तद्धीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित रीति से की जा चुकी हो ;

(2) लिखत या ज्ञापन को उन पुस्तकों में, यथास्थिति, सम्यक् रूप से प्रविष्ट या फाइल कर दिया गया हो जो उस अधिनियम की धारा 51 के अधीन रखी जाती हैं ; तथा

(3) उस संव्यवहार के बारे में, जिससे वह लिखत संबंधित है, विशिष्टियां उन अनुक्रमणिकाओं में ठीक-ठीक प्रविष्ट कर दी गई हों, जो उस अधिनियम की धारा 55 के अधीन रखी जाती हैं ।

स्पष्टीकरण 2 – जो व्यक्ति किसी स्थावर संपत्ति को या किसी ऐसी संपत्ति में के किसी अंश या हित को अर्जित करता है, यह समझा जाएगा कि उसे उस संपत्ति में उस व्यक्ति के हक की, यदि कोई हो, सूचना है, जिसका तत्समय उस पर वास्तविक कब्जा है ।

स्पष्टीकरण 3 – यदि किसी व्यक्ति के अभिकर्ता को किसी तथ्य की उस कारबार के अनुक्रम में, जिसके लिए वह तथ्य

तात्विक है, उस व्यक्ति की ओर से कार्य करते हुए सूचना मिल जाती है तो यह समझा जाएगा कि उस तथ्य की सूचना उस व्यक्ति को थी :

परन्तु यदि अभिकर्ता कपटपूर्वक तथ्य को छिपा लेता है तो जहां तक कि उस व्यक्ति का संबंध है, जो उस कपट में पक्षकार था या अन्यथा उसका संज्ञान रखता था, उसकी सूचना मालिक पर आरोपित न की जाएगी ।"

9. यह निष्कर्ष भी निकाला गया है कि वादी सदैव ही विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए तैयार और रज़ामन्द था । अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए सभी निष्कर्षों की पुष्टि की है ।

10. इस न्यायालय के समक्ष मामले पर विधि के उन सारभूत प्रश्नों की सीमा के भीतर विचार किया जाना चाहिए जो इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा विरचित किए गए हैं और जिन पर द्वितीय अपील ग्रहण की गई है ।

11. यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बी. सी. पांडे द्वारा यह आक्षेप उठाया गया है कि यह द्वितीय अपील विधि के सारभूत प्रश्नों पर भी ग्रहण किए जाने योग्य नहीं थी और तथ्यत: इसमें विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है और इसे ज्यादा से ज्यादा विधि और तथ्यों का सम्मिश्रित प्रश्न कहा जा सकता है । तथापि, चूंकि इस न्यायालय की एक समन्वय न्यायपीठ द्वारा यह अपील पहले ही ग्रहण की जा चुकी है इसलिए केवल न्यायहित में पक्षकारों को सुना जा रहा है ।

12. इस बारे में विचारण न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि वादी सदैव ही संविदा के अपने भाग के पालन के लिए तैयार और रज़ामन्द रहा था । इस तथ्य को साबित करने के लिए पुख्ता साक्ष्य मौजूद है क्योंकि वादी द्वारा तारीख 9 अप्रैल, 1985 को प्रतिवादी सं. 1 को स्पष्ट रूप से यह कहते हुए सूचना (नोटिस) जारी किया गया था कि वह विक्रय विलेख का निष्पादन कराने के लिए तैयार और रज़ामन्द है ।

13. विधि का दूसरा सारभूत प्रश्न यह है कि क्या सद्भाविक क्रेता के हक़ में ऐसी कोई डिक्री निष्पादित की जा सकती है जैसाकि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 19(ख) में उपबंधित है ।

14. इस संबंध में यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वह एकमात्र तथ्य जिसके द्‌वारा प्रतिवादी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की परिधि के अन्तर्गत आ सकते हैं, यह है कि वे यह उपदर्शित कर सकें कि वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता हैं और उन्हें पूर्वतर विक्रय करार के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । तथापि, यह सही नहीं है । इस बारे में ऊपर निर्दिष्ट धारा 3 के स्पष्टीकरण-I के अधीन विधि द्‌वारा गंभीर उपधारणा की गई है । यह स्वीकृत तथ्य है कि चूंकि यह एक रजिस्ट्रीकृत करार था, इसलिए विधि में यह उपधारित किया जाएगा कि प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 को पूर्वतर संविदा की जानकारी थी । दूसरे शब्दों में वे संपत्ति के सद्भाविक क्रेता नहीं हैं ।

15. जहां तक विधि के तीसरे सारभूत प्रश्न का संबंध है, प्रतिवादी सं. 1 इरफान के लिए यह आवश्यक था कि वह तीन वर्ष की अवधि तक प्रतीक्षा करता जो कि किसी वाद को संस्थित करने के लिए विधि के अधीन परिसीमावधि थी और ऐसा न करके इरफान ने जोखिम लिया था और प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने तारीख़ 1 अक्तूबर, 1985 के विक्रय विलेख के लिए स्वयं को पक्षकार बनाया क्योंकि यह विलेख तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से तीन वर्षों के भीतर किया गया था । विधि यह उपबंध करती है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद तीन वर्ष की अवधि के भीतर संस्थित किया जा सकता है । यह तीन वर्ष की अवधि वाद हेतुक उत्पन्न होने की तारीख़ से आरंभ होती है जो कि तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से आरंभ होगी । अत: मोहम्मद मुस्तफ़ा के पास इरफान के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद फाइल करने के लिए तारीख़ 30 अप्रैल, 1985 से तारीख़ 30 अप्रैल, 1988 तक का समय था । तीन वर्ष तक प्रतीक्षा न करके इरफान और प्रतिवादी सं. 2, 3 और 4 ने स्वयं को मुकदमेदारी में उलझा लिया । विधि के इस सारभूत प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया जाता है ।

16. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए यह एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

17. निचले न्यायालय का अभिलेख संबंधित न्यायालय को वापस भेजा जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 13 **गुजरात**

बाबूभाई माकनभाई पटेल

बनाम

गुजरात राज्य

(2016 की लेटर्स पेटेन्ट अपील सं. 999)

तारीख़ 7 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति जे. बी. पारदीवाला और न्यायमूर्ति ए. सी. राव

गुजरात भू-राजस्व संहिता, 1879 (1879 का 5) – धारा 135ख और 135ग – अधिकारों का अभिलेख – नामांतरण – अधिकार अभिलेखों में नामांतरण-प्रविष्टियों के संबंध में विवाद – सिविल न्यायालय में हक के संबंध में वाद का लंबन – अधिकार-अभिलेखों में प्रविष्टियां या नामांतरण संपत्ति में कोई अधिकार, हक़ या हित प्रदत्त नहीं करता – सिविल वाद में अंतिम निर्णय के अध्यधीन अधिकारों के अभिलेख को ठीक किया जाना चाहिए ।

वर्तमान अपील मूल आवेदकों द्वारा 2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 511 में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 5 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त निर्णय और आदेश

द्वारा हमारे समक्ष के अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज करना उचित समझा । अपीलार्थी-मूल आवेदकों ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से असंतुष्ट होकर इस न्यायालय के समक्ष यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और अभिलेख पर की अन्य सामग्री का परिशीलन करने पर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 511 में दिए गए आदेश में विधि की कोई त्रुटि करना प्रतीत नहीं होती है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले में दो सुसंगत पहलुओं पर विचार किया है, उनमें से प्रथम यह है कि विवाद प्रविष्टियों के नामांतरण से संबंधित है और द्वितीयत: अपीलार्थियों द्वारा फाइल 2009 का सिविल वाद सं. 104 लंबित है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह सही मत व्यक्त किया है कि अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टियों का नामांतरण प्रश्नगत संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित प्रदत्त नहीं करता । अधिकारों के अभिलेख में राजस्व प्रविष्टियां केवल राजस्व प्रयोजन के लिए अभिप्रेत हैं । इसके अतिरिक्त प्रश्नगत भूमि के संबंध में पक्षकारों के अधिकार 2009 के सिविल वाद सं. 104 में सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाएंगे । अन्तत: 2009 के सिविल वाद सं. 104 में अंतिम निर्णय के अध्यधीन अधिकारों के अभिलेख को ठीक किया जाएगा । इस प्रक्रम पर न्यायालय को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर कारण प्रतीत नहीं होता है । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह अपील विफल होती है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है । सूचना निर्मोचित की जाती है । (पैरा 4 और 5)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की लेटर्स पेटेन्ट अपील सं. 999.

2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 511 में उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 5 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विरल के. शाह

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री कृति एम. शाह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. बी. पारदीवाला ने दिया ।

न्या. पारदीवाला – वर्तमान अपील मूल आवेदकों द्वारा 2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 511 में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 5 जुलाई, 2016 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त निर्णय और आदेश द्वारा हमारे समक्ष के अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज करना उचित समझा । अपीलार्थी-मूल आवेदकों ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से असंतुष्ट होकर इस न्यायालय के समक्ष यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की है ।

2. अभिलेख पर की सामग्री से यह प्रकट होता है कि पक्षकारों के बीच विवाद अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टियों के नामांतरण के संबंध में है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आवेदन खारिज करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "3. आवेदकों ने ग्राम हजीरा, तालुका चोरायसी, जिला सूरत स्थित प्रश्नगत भूमि जिसकी सर्वेक्षण सं. 189/5, माप 2 एकड़ और 30 गुंटा है, के वारिस होने के रूप में अपने अधिकार का दावा किया है । अभिलेख से यह प्रकट होता है कि तारीख 2 सितंबर, 1974 की प्रविष्टि सं. 667 और तारीख 22 दिसंबर, 1980 की प्रविष्टि सं. 843 को वर्तमान आवेदक द्वारा एक अपील के जरिए वर्ष 2008 में आक्षेपित किया था जैसाकि याची के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा बताया गया है और जिसे 2008 की अपील सं. 370 में तारीख 17 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा अंतिम रूप दिया गया था । यह भी स्पष्ट होता है कि इसके पश्चात् आवेदकों ने हमारे समक्ष के प्राइवेट प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अधिकार का दावा करते हुए 2009 का सिविल वाद सं. 104 भी फाइल किया था । निचले प्राधिकारियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदक के नाम में प्रविष्टि को तब विनिश्चित किया जाएगा जब सिविल वाद जो सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित है, में अधिकार विनिश्चित किए जाएंगे ।

4. दोनों प्राधिकारियों द्वारा अभिव्यक्त उपर्युक्त मत का परिशीलन करने पर और विशेष रूप से और सचिव, राजस्व विभाग (अपील) द्वारा अपने आक्षेपित आदेश में दोहराए जाने को दृष्टिगत करते हुए यह स्पष्टतया उपदर्शित होता है कि दोनों ही प्राधिकारियों ने इस न्यायालय द्वारा झावेरभाई सावजीभाई पटेल **बनाम** कांचा बेन नाथूभाई पटेल और अन्य, 2005 (3) जी. एल. आर. 2233 और छीमी बेन हीराभाई गोपालभाई और अन्य **बनाम** गुजरात राज्य और अन्य, 2006 (3) जी. एल. आर. 2455 वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों को आबद्धकर मानते हुए उनका अनुसरण किया है ।

5. अत: उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय की यह राय है कि प्रत्यक्षतया अभिलेख पर ऐसी कोई त्रुटि नहीं की गई है जिसके कारण इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और/या 227 के अधीन अपनी असाधारण अधिकारिता द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक हो । आवेदक के विद्वान् अधिवक्ता श्री शाह द्वारा यह भी दलील दी गई है कि कुटुंब वंशावली की प्रति में स्पष्ट विभेद है जिस पर प्राधिकारियों द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है । तथापि, उक्त विवाद्यक 2015 के सिविल वाद सं. 109 की भी विषयवस्तु है और इस बारे में विद्वान् अधिवक्ता द्वारा भी इनकार नहीं किया गया है । तथापि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उक्त विवाद्यक वर्ष 2009 से लंबित है, विचारण न्यायालय को एतद्द्वारा उक्त विवाद को प्राथमिकता के आधार पर लिए जाने और सभी पक्षकारों को सुने जाने तथा आक्षेपित आदेश तथा वर्तमान आदेश से किसी भी रीति में प्रभावित हुए बिना उक्त वाद तारीख 31 दिसंबर, 2016 तक निपटाने का निदेश दिया जाता है ।"

3. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री विरल के. शाह ने यह कथन किया है कि लंबा समय बीत जाने के कारण उनके मुवक्किलों ने उनसे कागज-पत्र वापस ले लिए हैं । आज की तारीख को उन्हें मामले में कोई अनुदेश प्राप्त नहीं हैं । इन परिस्थितियों

में हम अपीलार्थियों की ओर से इस अपील में उपस्थित होने के उनके दायित्व से श्री शाह को निर्मुक्त करते हैं । अपीलार्थियों ने दूसरा अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है ।

4. हमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश और अभिलेख पर की अन्य सामग्री का परिशीलन करने पर विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2016 के विशेष सिविल आवेदन सं. 511 में दिए गए आदेश में विधि की कोई त्रुटि करना प्रतीत नहीं होता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले में दो सुसंगत पहलुओं पर विचार किया है, उनमें से प्रथम यह है कि विवाद प्रविष्टियों के नामांतरण से संबंधित है और द्वितीयत: अपीलार्थियों द्वारा फाइल 2009 का सिविल वाद सं. 104 लंबित है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह सही मत व्यक्त किया है कि अधिकारों के अभिलेख में प्रविष्टियों का नामांतरण प्रश्नगत संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित प्रदत्त नहीं करता । अधिकारों के अभिलेख में राजस्व प्रविष्टियां केवल राजस्व प्रयोजन के लिए अभिप्रेत हैं । इसके अतिरिक्त प्रश्नगत भूमि के संबंध में पक्षकारों के अधिकार 2009 के सिविल वाद सं. 104 में सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाएंगे । अन्ततः 2009 के सिविल वाद सं. 104 में अंतिम निर्णय के अध्यधीन अधिकारों के अभिलेख को ठीक किया जाएगा । इस प्रक्रम पर हमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई बेहतर कारण प्रतीत नहीं होता है ।

5. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह अपील विफल होती है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है । सूचना निर्मोचित की जाती है ।

6. चूंकि मुख्य अपील का निपटान कर दिया गया है इसलिए संबंधित सिविल आवेदन को भी निपटाया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

ऊषा देवी (श्रीमती)

बनाम

नागेन्द्र साह

(2017 की वैवाहिक अपील सं. 23)

तारीख़ 25 जनवरी, 2019

मुख्य न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना और न्यायमूर्ति अरूप कुमार गोस्वामी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-ख) – पति द्वारा अधित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल किया जाना – पति द्वारा यह कथन किया जाना कि उसकी पत्नी लगभग 17 वर्षों से अपने माता-पिता के घर पर रह रही है – पति द्वारा अधित्यजन का अभिवाक् साबित करने में विफ़लता – मात्र यह आधार कि पत्नी 17 वर्षों से अपने मायके में रह रही है, विवाह-विघटन के लिए पर्याप्त नहीं है – पति को अधित्यजन के तथ्य के साथ समर्पण के आशय को भी साबित करना चाहिए – अन्यथा पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हक़दार नहीं होगा ।

अपीलार्थी-पत्नी ने विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा 2010 के टी. एस. (डी.) सं. 12 में तारीख 11 जनवरी, 2017 को पारित निर्णय को आक्षेपित किया है । विद्वान् निचले न्यायालय ने उक्त निर्णय द्वारा हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी अर्थात् पति की हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन फाइल की गई अर्जी को स्वीकार किया है और तद्नुसार पक्षकारों के बीच विवाह को विघटित किया है । अत: अपीलार्थी ने उक्त निर्णय से व्यथित होने का दावा करते हुए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील फाइल की है । संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह हिन्दू रीतियों के अनुसार तारीख 10 जुलाई, 1996 को पानापुर, बिहार में सम्पन्न हुआ था ।

इसके पश्चात् वे साथ-साथ रहकर वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे और उनके विवाह से एक पुत्र सूरज कुमार **उर्फ** मोहित उत्पन्न हुआ । इस स्थिति में हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने यह अभिकथित करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन 2010 का टी. एस. (डी.) सं. 12 संस्थित किया कि हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने अचानक तारीख 10 अगस्त, 1997 को प्रत्यर्थी का मकान छोड़ दिया है । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि हमारे समक्ष के अपीलार्थी ने अपनी ससुराल छोड़कर प्रत्यर्थी का अधित्यजन कर दिया है और इस आधार पर प्रत्यर्थी ने विवाह के विघटन की ईप्सा की है । हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने उक्त कार्यवाहियों में अपना लिखित कथन फाइल किया था और हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी द्वारा अभिकथित दावे (लिखित कथन) का विरोध किया गया । अपीलार्थी द्वारा अन्य दलीलों के साथ-साथ यह दलील दी गई थी कि प्रत्यर्थी ने वस्तुत: पूर्व में अधित्यजन के आधार पर ही हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) (i-ख) के अधीन 2005 का टी. एस. (डी.) सं. 1 फाइल करते हुए यह अभिकथित किया था कि हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को उसका अधित्यजन कर दिया है । यह भी दलील दी गई थी कि उक्त कार्यवाहियां विरोध के आधार पर निपटाई गई थीं और प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अर्जी खारिज की गई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि एक ही अनुतोष के लिए पश्चात्वर्ती वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और इसके अतिरिक्त पूर्वतर कार्यवाहियों में दी गई दलीलों को दृष्टिगत करते हुए और उस आधार को दृष्टिगत करते हुए जिस पर वर्तमान वाद फाइल किया गया है और ऊपर उपदर्शित अधित्यजन की तारीख को दृष्टिगत करते हुए वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । निचले न्यायालय ने भी यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी अधित्यजन के अभिवाक् को साबित करने में विफल रहा है तथापि, इसके पश्चात् भी निचले न्यायालय ने केवल इस उल्लेख के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की कार्यवाही की । अत: अपीलार्थी-पत्नी ने निचले न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी भी दशा में चूंकि वर्तमान प्रकृति की प्रथम अपील में जहां परस्पर विरोधी अभिवचन आधार गठित करते हैं और निचले न्यायालय द्वारा जिस पर विचार किया गया है, एक ऐसा पहलू है जिसकी न्यायालय को निष्कर्ष निकालने से पूर्व विवेक्षा करनी है । न्यायालय ने अपील प्रपत्रों और निचले न्यायालय से प्राप्त अभिलेख को विचार में लिया है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वर्तमान वाद हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन फाइल किया गया है । पेश किए गए अभिवाकों के आधार पर विरचित अन्य विवाद्यकों के अतिरिक्त विवाद्यक सं. 4 अधित्यजन से जैसाकि 10 अगस्त, 1997 के रूप में बताया गया है, संबंधित है । यद्यपि न्यायालय के समक्ष के प्रत्यर्थी ने उस रीति के बारे में बताया है जिसमें अपीलार्थी-पत्नी अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी, तथापि, अपीलार्थी-पत्नी ने उन अन्य कार्यवाहियों के संबंध में पक्षकथन किया है जो पक्षकारों के बीच उद्भूत हुई थीं और साथ ही साथ उस शिकायत के बारे में बताया गया है जो पत्नी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498 के अधीन फाइल की गई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि इन परिस्थितियों में क्योंकि मोटरसाइकिल की मांग की गई थी और वह प्रत्यर्थी को नहीं दी गई थी इसलिए प्रत्यर्थी-पति ने अपीलार्थी-पत्नी को उसकी ससुराल से निकाल दिया । अपीलार्थी-पत्नी ने इन अभिवचनों में किए गए इस कथन में और साक्ष्य में यह मामला उपदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि यद्यपि उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था और वह अपने माता-पिता के मकान में रह रही थी तथापि, उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया गया था और ऐसी स्थिति प्रत्यर्थी के आचरण के कारण उत्पन्न हुई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए इस संबंध में तारीख 29 जनवरी, 2005 का निर्देश किया गया है जब मोटरसाइकिल की मांग की गई थी और मांग पूरी न किए जाने के परिणामस्वरूप उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था । इन परिस्थितियों में जहां प्रत्यर्थी-पति ने इस विनिर्दिष्ट पक्षकथन के साथ निचले न्यायालय में मामला फइल किया था कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 10 अगस्त, 1997 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी, इस संबंध में विनिर्दिष्ट साक्ष्य दिया जाना चाहिए था । किसी भी दशा में यह स्वीकृत

स्थिति है कि न्यायालय के समक्ष के प्रत्यर्थी ने पूर्व में अधित्यजन के आधार पर ही विवाह विघटित कराने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) का अवलंब लेते हुए 2005 का टी. एस. (डी.) सं. 1 फाइल किया था । उक्त कार्यवाहियों में यह दलील दी गई थी कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी । उक्त कार्यवाहियों में किए गए अभिवाक् तथा निर्णय को वर्तमान कार्यवाहियों में अभिलेख पर पेश किया गया है । इन परिस्थितियों में जहां प्रथमदृष्टया न्यायालय के समक्ष के प्रत्यर्थी ने यह कथन करते हुए सक्षम न्यायालय के समक्ष समावेदन किया था कि उसकी पत्नी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी और चूंकि पूर्वतर कार्यवाहियों में वह यह कहने में विफल रहा था वहां इस कथन के आधार पर कि अधित्यजन पूर्वतर तारीख अर्थात् तारीख 10 अगस्त, 1997 से किया गया था, किसी पश्चात्वर्ती वाद में स्वीकार करना किसी भी दशा में न्यायोचित नहीं होगा । तथ्यत: निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि निचला न्यायालय भी न्यायालय के समक्ष के प्रत्यर्थी द्वारा पेश किए गए पक्षकथन से संतुष्ट नहीं था । ऊपर उद्धृत पैरा के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि निचले न्यायालय ने भी यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी अधित्यजन के अभिवाक् को साबित करने में विफल रहा है तथापि, इसके पश्चात् भी निचले न्यायालय ने केवल इस उल्लेख के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की कार्यवाही की कि अपीलार्थी-पत्नी पिछले 17 वर्षों से अपने माता-पिता के मकान में रह रही है । यह बात स्वत: पति के अभिवाक् पर विवाह को विघटित करने के लिए एक आधार नहीं हो सकती जब तक कि अधित्यजन का तथ्य साबित न कर दिया जाए और जब तक समर्पण का आशय भी साबित न कर दिया जाए । इसे दृष्टिगत करते हुए न्यायालय का यह मत है कि चूंकि निचला न्यायालय अपना निष्कर्ष निकालने में न्यायोचित नहीं है इसलिए निचले न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता । तद्नुसार विद्वान् जिला न्यायाधीश, बोगई गांव द्वारा 2010 के टी. एस. (डी.) सं. 12 में तारीख 11 जनवरी, 2017 को पारित निर्णय अपास्त किया जाता है । (पैरा 8, 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की वैवाहिक अपील सं. 23.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आर. अली

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना और न्यायमूर्ति अरूप कुमार गोस्वामी द्‌वारा दिया गया ।

निर्णय

अपीलार्थी के विद्‌वान् काउंसेल श्री आर. अली को सुना गया ।

2. अपीलार्थी-पत्नी ने विद्‌वान् निचले न्यायालय द्‌वारा 2010 के टी. एस. (डी.) सं. 12 में तारीख 11 जनवरी, 2017 को पारित निर्णय को आक्षेपित किया है । विद्‌वान् निचले न्यायालय ने उक्त निर्णय द्‌वारा हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी अर्थात् पति की हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन फाइल की गई अर्जी को स्वीकार किया है और तद्‌नुसार पक्षकारों के बीच विवाह को विघटित किया है । अतः अपीलार्थी ने उक्त निर्णय से व्यथित होने का दावा करते हुए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील फाइल की है ।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों का विवाह हिन्दू रीतियों के अनुसार तारीख 10 जुलाई, 1996 को पानापुर, बिहार में सम्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् वे साथ-साथ रहकर वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे और उनके विवाह से एक पुत्र सूरज कुमार **उर्फ** मोहित उत्पन्न हुआ । इस स्थिति में हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने यह अभिकथित करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन 2010 का टी. एस. (डी.) सं. 12 संस्थित किया कि हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने अचानक तारीख 10 अगस्त, 1997 को प्रत्यर्थी का मकान छोड़ दिया है । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि हमारे समक्ष के अपीलार्थी ने अपनी ससुराल छोड़कर प्रत्यर्थी का अधित्यजन कर दिया है और इस आधार पर प्रत्यर्थी ने विवाह के विघटन की ईप्सा की है । हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने उक्त कार्यवाहियों में अपना लिखित कथन

फाइल किया था और हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी द्‌वारा अभिकथित दावे (लिखित कथन) का विरोध किया गया । अपीलार्थी द्‌वारा अन्य दलीलों के साथ-साथ यह दलील दी गई थी कि प्रत्यर्थी ने वस्तुत: पूर्व में अधित्यजन के आधार पर ही हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन 2005 का टी. एस. (डी.) सं. 1 फाइल करते हुए यह अभिकथित किया था कि हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को उसका अधित्यजन कर दिया है । यह भी दलील दी गई थी कि उक्त कार्यवाहियां विरोध के आधार पर निपटाई गई थीं और प्रत्यर्थी द्‌वारा फाइल की गई अर्जी खारिज की गई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि एक ही अनुतोष के लिए पश्चात्वर्ती वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और इसके अतिरिक्त पूर्वतर कार्यवाहियों में दी गई दलीलों को दृष्टिगत करते हुए और उस आधार को दृष्टिगत करते हुए जिस पर वर्तमान वाद फाइल किया गया है और ऊपर उपदर्शित अधित्यजन की तारीख को दृष्टिगत करते हुए वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

4. विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षकारों के अभिवचनों को विचार में लेते हुए विचारार्थ छह विवाद्‌यक विरचित किए, जो इस प्रकार हैं :–

> "(1) क्या वाद के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है ?
>
> (2) क्या वाद अपने वर्तमान प्ररूप में ग्रहण किए जाने योग्य है ?
>
> (3) क्या वाद पूर्व-न्याय द्‌वारा वर्जित है ?
>
> (4) क्या प्रत्यर्थी ने तारीख 10 अगस्त, 1997 को अर्जीदार का अधित्यजन कर दिया है ?"

5. प्रत्यर्थी द्‌वारा निचले न्यायालय के समक्ष अपने तर्कों को साबित करने के लिए स्वयं की पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा कराई गई थी । हमारे समक्ष की अपीलार्थी ने भी डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई थी । निचले न्यायालय ने पक्षकारों द्‌वारा पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर साक्ष्य का विश्लेषण करके अन्तत: अपना निष्कर्ष दिया ।

6. प्रारंभत: अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निर्णय को आक्षेपित करते हुए 2010 के टी. एस. (डी.) सं. 12 में किए गए अभिवचनों की प्रकृति और 2005 के पूर्वतर टी. एस. (डी.) सं. 1 में किए गए अभिवचनों की प्रकृति को निर्दिष्ट किया है । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि चूंकि पूर्वतर वाद यह कहते हुए इन अभिकथनों के अधीन फाइल किया गया था कि अपीलार्थी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को प्रत्यर्थी का अधित्यजन कर दिया था इसलिए यह न केवल अनुचित है अपितु यह दलील देना भी गलत है कि अधित्यजन की तारीख 10 अगस्त, 1997 है जबकि पश्चात्वर्ती वाद पूर्वतर वाद फाइल करने के लगभग 5 वर्ष के पश्चात् अर्थात् वर्ष 2010 में फाइल किया गया है । यह दलील दी गई है कि चूंकि वाद सभी संभाव्य कथनों के आधार पर और अधित्यजन के आधार पर संस्थित किया गया था इसलिए निचले न्यायालय को पश्चात्वर्ती वाद में किए गए पक्षकथन को स्वीकार नहीं करना चाहिए था । यह भी दलील दी गई है कि तथ्यत: साक्ष्य का जो पेश किया गया है, विश्लेषण करने पर निचले न्यायालय ने भी मामले के इस पहलू पर चर्चा की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि अधित्यजन के अभिवाक् को साबित करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया गया है । निचले न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालने के बावजूद गलत रूप से कार्यवाही करते हुए असाध्य रूप से खंडित विवाह पर विचार करके विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर की गई है । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उपस्थित होना और दी गई दलीलों का विरोध करना पसंद नहीं किया ।

8. किसी भी दशा में चूंकि वर्तमान प्रकृति की प्रथम अपील में जहां परस्पर विरोधी अभिवचन आधार गठित करते हैं और निचले न्यायालय द्वारा जिस पर विचार किया गया है, एक ऐसा पहलू है जिसकी हमें निष्कर्ष निकालने से पूर्व विवेक्षा करनी है । हमने अपील प्रपत्रों और निचले न्यायालय से प्राप्त अभिलेख को विचार में लिया है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वर्तमान वाद हिन्दू विवाह अधिनियम की

धारा 13(1)(i-ख) के अधीन फाइल किया गया है । पेश किए गए अभिवाकों के आधार पर विरचित अन्य विवाद्यकों के अतिरिक्त विवाद्यक सं. 4 अधित्यजन से जैसाकि 10 अगस्त, 1997 के रूप में बताया गया है, संबंधित है । यद्यपि हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने उस रीति के बारे में बताया है जिसमें अपीलार्थी-पत्नी अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी, तथापि, अपीलार्थी-पत्नी ने उन अन्य कार्यवाहियों के संबंध में पक्षकथन किया है जो पक्षकारों के बीच उद्भूत हुई थीं और साथ ही साथ उस शिकायत के बारे में बताया गया है जो पत्नी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498 के अधीन फाइल की गई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए यह दलील दी गई है कि इन परिस्थितियों में क्योंकि मोटरसाइकिल की मांग की गई थी और वह प्रत्यर्थी को नहीं दी गई थी इसलिए प्रत्यर्थी-पति ने अपीलार्थी-पत्नी को उसकी ससुराल से निकाल दिया । अपीलार्थी-पत्नी ने इन अभिवचनों में किए गए इस कथन में और साक्ष्य में यह मामला उपदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि यद्यपि उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था और वह अपने माता-पिता के मकान में रह रही थी तथापि, उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया गया था और ऐसी स्थिति प्रत्यर्थी के आचरण के कारण उत्पन्न हुई थी । इसे दृष्टिगत करते हुए इस संबंध में तारीख 29 जनवरी, 2005 का निर्देश किया गया है जब मोटरसाइकिल की मांग की गई थी और मांग पूरी न किए जाने के परिणामस्वरूप उसे उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था । इन परिस्थितियों में जहां प्रत्यर्थी-पति ने इस विनिर्दिष्ट पक्षकथन के साथ निचले न्यायालय में मामला फाइल किया था कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 10 अगस्त, 1997 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी, इस संबंध में विनिर्दिष्ट साक्ष्य दिया जाना चाहिए था । किसी भी दशा में यह स्वीकृत स्थिति है कि हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने पूर्व में अधित्यजन के आधार पर ही विवाह विघटित कराने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) का अवलंब लेते हुए 2005 का टी. एस. (डी.) सं. 1 फाइल किया था । उक्त कार्यवाहियों में यह दलील दी गई थी कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी । उक्त कार्यवाहियों में किए गए अभिवाक् तथा निर्णय को वर्तमान कार्यवाहियों में अभिलेख पर

पेश किया गया है । इन परिस्थितियों में जहां प्रथमदृष्ट्या हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने यह कथन करते हुए सक्षम न्यायालय के समक्ष समावेदन किया था कि उसकी पत्नी ने तारीख 20 दिसंबर, 2004 को अपनी ससुराल छोड़ दी थी और चूंकि पूर्वतर कार्यवाहियों में वह यह कहने में विफल रहा था वहां इस कथन के आधार पर कि अधित्यजन पूर्वतर तारीख अर्थात् तारीख 10 अगस्त, 1997 से किया गया था, किसी पश्चात्वर्ती वाद में स्वीकार करना किसी भी दशा में न्यायोचित नहीं होगा । तथ्यत: निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि निचला न्यायालय भी हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी द्वारा पेश किए गए पक्षकथन से संतुष्ट नहीं था । यह बात निचले न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 13 में किए गए संप्रेक्षण से और निकाले गए निष्कर्ष से साबित होती है और इसलिए यहां उसे उद्धृत करना उचित होगा जिससे स्थिति स्पष्ट होगी :-

> "13. जहां तक अधित्यजन के आधार का संबंध है, अर्जीदार द्वारा फाइल की गई अर्जी और प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन तथा पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य से संयुक्त परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अधित्यजन के अभिवाक् को साबित करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया गया है । तथापि, वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी पिछले 17 वर्षों से अपने माता-पिता के मकान में रह रही है । वह केवल अपना भरणपोषण प्राप्त करने के लिए बोगई गांव आती-जाती है । इस बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है वह जब भी कभी आई तब उसने अपने पति से विवाद को सुलझाने का प्रयत्न किया हो अथवा वह दाम्पत्य जीवन को पुन: आरंभ करने के लिए पुन: अपने पति के मकान पर गई हो । इस न्यायालय ने विवाद्यक विरचित करने से पूर्व सुलह करने के प्रयत्न किए तथापि, विवाद को सुलझाने के लिए पक्षकार तैयार नहीं हैं । इस प्रक्रिया में पति और पत्नी के बीच वैवाहिक बंधन असाध्य रूप से खंडित हो गया है और सुलह के और खुशगवार दाम्पत्य जीवन बिताने के कोई आसार नहीं हैं । चूंकि अर्जीदार और प्रत्यर्थी तारीख 29 जनवरी, 2005 से आज की

तारीख तक पृथक्-पृथक् रह रहे हैं इसलिए मेरा यह सुविचारित मत है कि विवाह खंडित हो गया है और पक्षकारों द्वारा एक दूसरे के साथ रहने की संभावनाएं समाप्त हो गई हैं । पक्षकार इस स्थिति में आपस में समझौता करने और 'भूल जाओ और जाने दो' का सिद्धांत का अनुसरण करते हुए साथ-साथ रहने के लिए तैयार नहीं हैं । पक्षकारों के बीच 2005 से मुकदमेदारी चल रही है और उन्होंने अपने जीवन का बहुमूल्य समय खो दिया है और वे अपने जीवन के शेष भाग को शांतिपूर्वक जीना चाहते हैं और इसलिए यह न्याय हित में होगा कि उन्हें विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह को विघटित करने का अनुतोष मंजूर किया जाए ।"

9. ऊपर उद्धृत पैरा के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि निचले न्यायालय ने भी यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी अधित्यजन के अभिवाक् को साबित करने में विफल रहा है तथापि, इसके पश्चात् भी निचले न्यायालय ने केवल इस उल्लेख के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने की कार्यवाही की कि अपीलार्थी-पत्नी पिछले 17 वर्षों से अपने माता-पिता के मकान में रह रही है । यह बात स्वत: पति के अभिवाक् पर विवाह को विघटित करने के लिए एक आधार नहीं हो सकती जब तक कि अधित्यजन का तथ्य साबित न कर दिया जाए और जब तक समर्पण का आशय भी साबित न कर दिया जाए । इसे दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि चूंकि निचला न्यायालय अपना निष्कर्ष निकालने में न्यायोचित नहीं है इसलिए निचले न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

10. तद्नुसार विद्वान् जिला न्यायाधीश, बोगई गांव द्वारा 2010 के टी. एस. (डी.) सं. 12 में तारीख 11 जनवरी, 2017 को पारित निर्णय अपास्त किया जाता है ।

11. अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

भक्तवत्सल सिंह राजपूत

बनाम

श्रीमती वंदना राजपूत

(2018 की रिट याचिका सं. 553)

तारीख 9 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति थोटाथिल बी. राधाकृष्णन

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 13(1)(i) और 14 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 497 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 1, नियम 10(2)] – पत्नी द्वारा जारकर्म के आधार पर विवाह-विच्छेद का आवेदन – न्यायालय द्वारा जारकर्म में संलिप्त व्यक्ति को आवश्यक पक्ष मानते हुए मामले का पक्ष बनाए जाने के लिए आदेश पारित किया जाना – यदि न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के साथ जारकर्म किया है तो न्यायालय कार्यवाही में जारकर्म करने वाले व्यक्ति को संयोजित किया जाना न्यायसंगत होगा – जारकर्म करने वाला विवाह-विच्छेद के लिए फाइल किए गए आवेदन में उचित पक्ष होता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची ने 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी/पत्नी ने जारकर्म किया है और उसके तरुण नामक व्यक्ति के साथ अवैध संबंध हैं । प्रत्यर्थी/पत्नी ने इस आवेदन के लंबन के दौरान हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन वाद के लंबन रहने के दौरान भरणपोषण और वाद की कार्यवाहियों के खर्चों का संदाय कराए जाने के लिए आदेश पारित किए जाने की ईप्सा करते हुए आवेदन प्रस्तुत किया । इस आवेदन को कुटुम्ब न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते हुए आदेश में निर्धारित

रकमों का संदाय किए जाने के लिए निर्देशित करते हुए मंजूर कर लिया गया । कुटुम्ब न्यायालय ने यह इस बाबत भी निर्देशित किया कि उपरोक्त तरुण को कार्यवाही में प्रत्यर्थी बनाया जाए । कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित आदेश को संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई प्रस्तुत याचिका में चुनौती दी गई । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी ऐसी कार्यवाही, जिसमें न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ स्वैच्छिक रूप से लैंगिक मैथून कारित किया, न्यायालय कार्यवाही में उस व्यक्ति को प्रत्यर्थी (अभिकथित रूप से जारकर्म करने वाले) व्यक्ति के रूप में संयोजित करने के द्वारा विवाद को प्रभावी और संपूर्ण रूप से न्यायनिर्णीत करने की स्थिति में होगा । अभिकथित जारकर्म करने वाला हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i) के अधीन चलने वाली कार्यवाहियों में उचित पार्टी होता है । अभिकथित जारकर्म करने वाला भी उचित पार्टी होगा यद्यपि यह हो सकता है कि वह आवश्यक पक्ष न हो । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) का उद्देश्य ऐसे सभी व्यक्तियों को अभिलेख पर लाना है जो मामले की विषयवस्तु से संबंधित विवाद के पक्ष हों, ताकि विवाद उनकी उपस्थिति में विनिर्धारित हो सके और तत्समय किसी को कोई संरक्षण या असुविधा का सामना न करना पड़े और कार्यवाहियों की बहुलता से भी बचा जा सके । इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अधिकथित किया कि किसी व्यक्ति को वाद में प्रतिवादी पक्ष के रूप में संयोजित किया जा सकता है चाहे उसके विरुद्ध कोई किसी अनुतोष का दावा न किया गया हो परंतु उस व्यक्ति की उपस्थिति वाद में अंतर्वलित प्रश्न के संपूर्ण और अंतिम विनिश्चय के लिए आवश्यक हो । (पैरा 12 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2003] ए. आई. आर. 2003 कर्नाटक 508 :
अरुण कुमार अग्रवाल बनाम **राधा अरुण** ; 12

[1995]	(1995) 3 एस. सी. सी. 147 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1782 : **अनील कुमार सिंह** बनाम **शिवनाथ मिश्रा** ;	11
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 886 : **रजिया बेगम** बनाम **साहेबजादी अनवर बेगम** ।	12

आरंभिक रिट याचिका : 2018 की रिट याचिका सं. 553.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

याची की ओर से –

प्रत्यर्थियों की ओर से –

आदेश

यह आवेदन संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल किया गया है । इस आवेदन के अंतर्गत मामला 1984 के कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम कहकर निर्दिष्ट किया गया है) के अंतर्गत स्थापित कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित आदेश से उद्भूत हुआ है ।

2. याची ने 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी/पत्नी ने जारकर्म (व्यभिचार) किया है, उसके तरुण नामक व्यक्ति, जिसका पता इस रिट याचिका के पैरा सं. 8.4 में उल्लिखित है, के साथ अवैध संबंध हैं । प्रत्यर्थी/पत्नी ने इस आवेदन के लंबन के दौरान हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन वाद के लंबन रहने के दौरान भरणपोषण और वाद की कार्यवाहियों के खर्चों का संदाय कराए जाने के लिए आदेश पारित किए जाने की ईप्सा करते हुए, आवेदन प्रस्तुत किया । इस आवेदन को कुटुम्ब न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते हुए, आदेश में निर्धारित रकमों का संदाय किए जाने के लिए निर्देशित करते हुए मंजूर कर लिया गया । निचले न्यायालय ने यह इस बाबत भी निर्देशित किया कि उपरोक्त तरुण को कार्यवाही में प्रत्यर्थी

के रूप में पक्ष बनाया जाए । इसी आदेश को चुनौती दी गई ।

3. निचले न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सम्यक् और निष्पक्ष रूप से विवेक का प्रयोग करते हुए वादकालीन भरणपोषण और भोजन और यात्रा खर्च को सम्मिलित करते हुए मुकदमेबाजी के खर्चों के संदाय के लिए आदेश पारित किया गया । इस आदेश के अंतर्गत प्रदान की गई रकमों को अत्यधिक या विधि के अधीन अननुज्ञेय नहीं माना जा सकता । इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

4. अब जो प्रश्न विचारार्थ शेष रह जाता है, वह यह है कि क्या निचले न्यायालय ने रिट याची द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए फाइल किए गए आवेदन में तरुण नामक व्यक्ति को यह कहते हुए कि पत्नी ने उक्त व्यक्ति के साथ जारकर्म (व्यभिचार) कारित किया है, सह-प्रत्यर्थी के रूप में जोड़े जाने के लिए निर्देशित करके बिना अधिकारिता के और अवैध रूप से कार्य किया ।

5. निचले न्यायालय के समक्ष याची का अभिवाक् यह था कि तरुण ही वह व्यक्ति है जिसके साथ प्रत्यर्थी ने जारकर्म (व्यभिचार) कारित किया । रिट याची के इस अभिवाक् को इस रिट याचिका में भी दोहराया गया है, जैसाकि ऊपर उल्लिखित है ।

6. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 14 और 21 में उच्च न्यायालय को नियम बनाने की शक्तियां प्रदान किया जाना भी सम्मिलित है । छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने हिंदू विवाह अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों को विनियमित किए जाने के प्रयोजनार्थ नियम विरचित किए हैं । हिंदू विवाह अधिनियम के अंतर्गत अधिनियमित नियमों में 2007 के छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का नियम 366 भी सम्मिलित है । इन नियमों के उपनियम (2) का खंड (vii)(ङ)(ii) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित करता है कि यदि विवाह-विच्छेद के लिए प्रस्तुत की गई याचिका जारकर्म (व्यभिचार) के आधार पर प्रस्तुत की गई है, तो सभी व्यक्तियों, जिनके साथ इस प्रकार के कार्य कारित किया जाना

याचिका में अभिकथित है, के नाम और पते भी याचिका में अभिकथित किए जाने चाहिए । अत:, वे कानूनी नियम जो लागू होते हैं, स्वयमेव अभिकथित जारकर्म (व्यभिचार) को छत्तीसगढ़ राज्य में किसी भी न्यायालय में किसी भी कार्यवाही में हिंदू विवाह अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत की गई कार्यवाहियों में सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्ष बनाए जाने के लिए उपबंधित करते हैं ।

7. यदि 1869 के विवाह-विच्छेद अधिनियम के उपबंधों पर विचार किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि इस अधिनियम की धारा 11 विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित करती है कि जारकर्म करने वाली को सह-प्रत्यर्थी बनाया जाएगा जब तक कि याची को न्यायालय द्वारा उन दशाओं को ध्यान में रखते हुए, जिनको इस धारा में उल्लिखित किया गया है, ऐसा किए जाने से मुक्त नहीं कर दिया जाता । तथापि, हिंदू विवाह अधिनियम अभिकथित जारकर्म करने वाले को जारकर्म के अधार पर पक्ष बनाए जाने को बाध्यकारी नहीं करता ।

8. तब क्या परिस्थिति होगी जब नियम अभिकथित जारकर्म करने वाले को सह-प्रत्यर्थी के रूप में पक्ष बनाए जाने की अपेक्षा नहीं करते ।

9. निचला न्यायालय कुटुम्ब न्यायालय होने के नाते अन्य बातों के अलावा कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 10 द्वारा शासित है । इस धारा में तीन उपधाराएं समाविष्ट हैं । उपधारा (2) कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अंतर्गत होने वाली कार्यवाहियों पर लागू होती है । धारा 10 की उपधारा (1) कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष चलने वाले समस्त वादों और कार्यवाहियों पर लागू होती है, सिवाय सिविल प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 के अंतर्गत चलने वाली कार्यवाहियों के । सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंध कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष लंबित वादों और कार्यवाहियों पर लागू होंगे और सिविल प्रक्रिया संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजनार्थ कुटुम्ब न्यायालय को सिविल न्यायालय प्रतीत किया जाएगा और कुटुम्ब न्यायालय को सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियां प्राप्त होंगी । कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 10 उपधारा (3) उपबंधित करती है कि धारा 10 की उपधारा (1) या (2) में

समाविष्ट कोई भी बात कुटुम्ब न्यायालय को एक पक्ष द्वारा अभिकथित किए गए और दूसरे पक्ष द्वारा इनकार किए गए तथ्यों की सत्यता का पता लगाए जाने को दृष्टि में रखते हुए अन्य बातों के साथ-साथ अपनी स्वयं की प्रक्रिया अधिकथित करने से प्रविरत नहीं करेगी ।

10. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 1, नियम 10(2) इस प्रकार है :-

> "(2) न्यायालय पक्षकारों के नाम काट सकेगा या जोड़ सकेगा – न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में या तो दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबंधनों पर जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों, यह आदेश दे सकेगा कि वादी के रूप में या प्रतिवादी के रूप में अनुचित तौर पर संयोजित किसी भी पक्षकार का नाम काट दिया जाए और किसी पक्षकार का नाम जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में ऐसे संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी रूप से और पूरी तरह न्यायनिर्णय और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ दिया जाए ।"

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अनील कुमार सिंह** बनाम **शिवनाथ मिश्रा**[1] वाले मामले में यह अधिकथित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) का उद्देश्य ऐसे सभी व्यक्तियों को अभिलेख पर लाना है जो मामले की विषयवस्तु से संबंधित विवाद के पक्ष हों, ताकि विवाद उनकी उपस्थिति में विनिर्धारित हो सके और तत्समय किसी को कोई संरक्षण या असुविधा का सामना न करना पड़े और कार्यवाहियों की बहुलता से भी बचा जा सके । इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अधिकथित किया कि किसी व्यक्ति को वाद में प्रतिवादी पक्ष के रूप में संयोजित किया जा सकता है चाहे उसके विरुद्ध कोई किसी अनुतोष का दावा न किया गया हो परंतु उस व्यक्ति की उपस्थिति वाद में अंतर्वलित प्रश्न के संपूर्ण और अंतिम

---

[1] (1995) 3 एस. सी. सी. 147 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1782.

विनिश्चय के लिए आवश्यक हो ।

12. किसी ऐसी कार्यवाही, जिसमें न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ स्वैच्छिक रूप से लैंगिक मैथुन कारित किया, न्यायालय कार्यवाही में उस व्यक्ति को प्रत्यर्थी (अभिकथित रूप से जारकर्म करने वाले) व्यक्ति के रूप में संयोजित करने के द्वारा विवाद को प्रभावी और संपूर्ण रूप से न्यायनिर्णीत करने की स्थिति में होगा । अभिकथित जारकर्म करने वाला हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i) के अधीन चलने वाली कार्यवाहियों में उचित पार्टी होता है । अभिकथित जारकर्म करने वाला भी उचित पार्टी होगा यद्यपि यह हो सकता है कि वह आवश्यक पक्ष न हो । इस बाबत समर्थन के लिए देखें **अरुण कुमार अग्रवाल** बनाम **राधा अरुण**[1] वाला मामला । मैं इस न्यायिक निर्णयज विधि, जिसको माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **रजिया बेगम** बनाम **साहेबजादी अनवर बेगम**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए पारित किया गया था, द्वारा अधिकथित निर्णीत विनिश्चयानुपात के साथ सहसम्मान सहमत हूं । संदर्भात्मक रूप से **अरुण कुमार अग्रवाल** (उपरोक्त) वाले मामले में निम्नलिखित लेखांश को उद्धृत किया जाना सुसंगत होगा :–

> "7. किंतु तब क्या होगा जब नियम अभिकथित जारकर्म करने वाले को सह प्रत्यर्थी के रूप में पक्ष बनाए जाने की अपेक्षा न करते हों, यद्यपि उसको याचिका में नामित किया गया हो ? हमको नियम की अनुपस्थिति में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 3, 5 और 10(2) का अवलंब लेना होगा । नियम 3 उपबंधित करता है कि वे सभी व्यक्ति प्रतिवादियों के रूप में एक वाद में संयोजित किए जा सकेंगे जहां एक ही कार्य या संव्यवहार या संव्यवहारों की आवली के बारे में या उससे पैदा होने वाले अनुतोष पाने का कोई अधिकार उनके विरुद्ध संयुक्ततः या पृथक्तः या अनुकल्पततः वर्तमान होना अधिकथित है और यदि ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध पृथक्-पृथक् वाद लाए जाते तो विधि या तथ्य

---

[1] ए. आई. आर. 2003 कर्नाटक 508.

[2] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 886.

का समान प्रश्न पैदा होता । नियम 5 यह स्पष्ट करता है कि यह आवश्यक नहीं होगा कि हर प्रतिवादी अपने विरुद्ध किसी वाद में दावाकृत संपूर्ण अनुतोष के बारे में हितबद्ध हो । नियम 10(2) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित करता है कि न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में या तो दोनों पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर या उसके बिना और ऐसे निबंधनों पर जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हों, यह आदेश दे सकेगा कि वादी के रूप में या प्रतिवादी के रूप में अनुचित तौर पर संयोजित किसी भी पक्षकार का नाम काट दिया जाए और किसी व्यक्ति का नाम जिसे वादी या प्रतिवादी के रूप में ऐसे संयोजित किया जाना चाहिए था या न्यायालय के सामने जिसकी उपस्थिति वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का प्रभावी तौर पर और पूरी तरह न्यायनिर्णयन और निपटारा करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से आवश्यक हो, जोड़ दिया जाए ।"

13. पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निचले न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन में तरुण नामक व्यक्ति को अतिरिक्त प्रत्यर्थी के रूप में सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ दिए गए निर्देश में कोई अवैधता नहीं पाई जाती, अन्यथा आवेदन असफल हो जाएगा । अतः, इस निर्देश में मध्यक्षेप करने का कोई आधार नहीं है ।

14. परिणामस्वरूप, संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई याचिका असफल होती है । तदनुसार इस याचिका को खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

अवि.

राजेश कुमार चन्द्र

बनाम

श्रीमती सविता चन्द्र

(2015 की एफ. ए. एम. सं. 90)

तारीख़ 21 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति मनिन्दर मोहन श्रीवास्तव और न्यायमूर्ति गौतम चौरदिया

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(i-क) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्ज़ी – वादी-पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता का अभिकथन – वादी द्वारा यह कथन किया जाना कि पत्नी ने उस पर हमला किया था और उसके गुप्तांग पर लात मारी थी – पति द्वारा किए गए अभिकथनों को अकाट्य साक्ष्य द्वारा साबित न किया जाना – मात्र सामान्य अभिकथनों के आधार पर पति विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हक़दार नहीं है – ऐसे अभिकथनों को अकाट्य और विनिर्दिष्ट साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13(i-ख) – अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध – वादी-पति द्वारा यह अभिकथन किया जाना कि पत्नी बार-बार मायके चली जाती थी – पति द्वारा तारीख़ और समय का उल्लेख न किया जाना – पत्नी द्वारा एक साथ रहने के दौरान दो बार गर्भधारण करना – वाद पत्नी के मायके जाने के एक वर्ष के पश्चात् फाइल किया जाना – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हक़दार नहीं है ।

अपीलार्थी ने अन्य बातों के साथ-साथ इन अभिवचनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध करते हुए एक वाद फाइल किया था कि यद्यपि पक्षकारों के विवाह के पश्चात् जो तारीख 17 अप्रैल, 2009 को हुआ था, आरंभत: प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी के साथ शांतिपूर्वक रहती रही तथापि, बाद में उसने उसके माता-पिता के साथ

लड़ाई-झगड़ा करना आरंभ कर दिया और उनके साथ क्रूरता भी बरती । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी किसी को भी सूचना दिए बिना बार-बार अपने माता-पिता के घर चली जाती थी और अत्यधिक खुशामद के पश्चात् ही वह अपनी ससुराल लौट कर वापस आती थी । यह भी अभिवचन किया गया है कि माता-पिता के मकान पर जाने के विवाद्यक पर प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने माता-पिता को बुलाकर हमला भी किया था और अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों को यह धमकी दी थी कि वह उन्हें दहेज के मामले में मिथ्या फंसाएगी । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी पर अपने माता-पिता से पृथक् रहने के लिए जोर देती थी जिसके कारण पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था । तारीख 8 फरवरी, 2010 को प्रत्यर्थी यह कहकर अपने माता-पिता के घर गई थी कि वह अपनी शैक्षिक परीक्षा में बैठने की इच्छुक है और उसके पश्चात् वह अनेक प्रयासों के बावजूद अपनी ससुराल वापस नहीं आई । विवाद को सुलझाने के लिए मामला समुदाय के समक्ष रखा गया था जहां सलाह दिए जाने के बावजूद प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी ससुराल लौट कर वापस नहीं आई । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया था और इन कार्यवाहियों में भी प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह कहा कि वह बच्चे के जन्म के पश्चात् अपनी ससुराल वापस जाएगी किन्तु वह कभी भी वापस नहीं आई । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को वैवाहिक सहवास से वंचित किया और क्रूरता तथा परित्यजन के इन अभिवचनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया गया था । वादी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए पांच साक्षियों की परीक्षा कराई । प्रतिवादी ने जवाब में 4 साक्षियों की परीक्षा कराई । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों की पृष्ठभूमि में अभिलेख पर के मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि क्रूरता का पक्षकथन साबित नहीं हुआ है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने परित्यजन के विवाद्यक के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि वाद स्वत: अपरिपक्व है । यह अपील 2011 के सिविल वाद सं. 53ए में कुटुंब

न्यायालय, कोरबा के न्यायाधीश द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 2015 को पारित उस आक्षेपित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-वादी का क्रूरता तथा परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादपत्र में यथा उल्लिखित क्रूरता के संबंध में ये अभिवचन किए गए हैं कि विवाह के तुरन्त पश्चात् प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के माता-पिता से लड़ाई-झगड़ा करना आरंभ कर दिया था और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अक्सर अपने मायके चली जाती थी और वह भी कोई इत्तिला दिए बिना और वह अत्यधिक खुशामद करने के बाद वापस आती थी । वादपत्र में एक मुख्य आधार यह उल्लिखित किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता को बुलाकर हमला किया था और दहेज मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी भी दी थी । क्रूरता के संबंध में यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अपने पति पर उसके माता-पिता से पृथक् रहने के लिए बल देती थी । अंततः यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को सहवास से वंचित किया था जो कि क्रूरता के समतुल्य है । यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान मामले में स्वीकृततः विवाह तारीख 17 अप्रैल, 2009 को सम्पन्न हुआ था और प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 से अपीलार्थी के साथ नहीं रह रही है । यद्यपि दोनों ही पक्षकारों ने इस बारे में भिन्न-भिन्न कारण बताए हैं कि प्रत्यर्थी पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपने मायके क्यों चली गई थी, तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि प्रत्यर्थी पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 के पश्चात् से अपीलार्थी-पति के साथ नहीं रह रही है । अतः क्रूरता से संबंधित सभी अभिकथन इस संक्षिप्त अवधि से संबंधित हैं कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी-पति और पत्नी के रूप में तारीख 17 अप्रैल, 2009 से तारीख 8 फरवरी, 2010 तक अर्थात् 10 मास से भी कम अवधि तक साथ-साथ रहे हैं तथापि, क्रूरता से संबंधित सभी अभिवचन अर्थात् माता-पिता के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार, बिना किसी इत्तिला के बार-बार अपने मायके चले जाना और अत्यधिक खुशामद

करने के पश्चात् वापस आना, पति के ऊपर हमला करना, मिथ्या अन्तर्वलन की धमकी देना, पृथक् रहने पर जोर देना और वैवाहिक सहवास से वंचित करना, पूर्णतया अस्पष्ट हैं । ये अभिवचन कि प्रत्यर्थी बिना किसी कारण के अपीलार्थी के माता-पिता से लड़ाई-झगड़ा करती थी और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करती थी, किसी विनिर्दिष्ट अभिवचन के बिना किए गए हैं । साक्ष्य में यह आया है कि प्रत्यर्थी का मायका केवल 10 किलोमीटर दूर है । वादपत्र के पैरा 3 में यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अक्सर अपने मायके चली जाती थी और राजेश कुमार चन्द्र पी. डब्ल्यू. 1 ने अपने साक्ष्य में भी बार-बार चले जाने के समय के बारे में विनिर्दिष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है और अस्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अपने मायके चली जाती थी । दस माह की संक्षिप्त अवधि में किस मास में और किस तारीख को वह अपने मायके गई थी, अपीलार्थी द्वारा अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं कहा गया है । अपीलार्थी के माता और पिता ने भी जिनकी वादी साक्षियों के रूप में परीक्षा कराई गई है, उसी साक्ष्य को दोहराया है जो अपीलार्थी द्वारा कहा गया है और उन्होंने भी इस संबंध में कोई विनिर्दिष्ट ब्यौरा नहीं दिया है । हमले का अभिकथन भी किया गया है । तथापि, तारीख या मास जब यह हमला किया गया था और यह हमला किस प्रकार किया गया था और प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया की गई थी, इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन नहीं किया गया है । अपीलार्थी-राजेश कुमार चन्द्र-पी. डब्ल्यू. 1 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी उसके गुप्तांग पर लात मारती थी जिसके परिणामस्वरूप उसके ख़ीसों पर सूजन आ जाती थी तथापि, अपीलार्थी द्वारा इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी ने उपचार करने का चिकित्सा प्रमाणपत्र या इस बारे में कि किस चिकित्सक द्वारा उपचार किया गया था, कोई प्रमाणपत्र दाखिल नहीं किया है । ऊपर यथा अभिकथित उस पर हमला करने के बारे में किए गए अभिकथन अस्पष्ट हैं क्योंकि ऐसी किसी घटना की तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया गया है । (पैरा 9, 10 और 11)

इस अभिकथन को भी कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को वैवाहिक नातेदारी/सहवास और शारीरिक मांगों से वंचित किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों पक्षकारों द्वारा इस बारे में प्रभावी साक्ष्य दिया गया है कि प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी तथापि बाद में गर्भपात करा दिया गया था । अपीलार्थी ने अपने साक्ष्य के पैरा 8 में यह कहा है कि 2009 के अक्तूबर मास में प्रत्यर्थी का गर्भपात कराया गया था और प्रत्यर्थी ने पति के विरुद्ध आरोप लगाने आरंभ कर दिए थे । इससे यह उपदर्शित होता है कि अक्तूबर, 2009 के पूर्व पक्षकारों के बीच सहवास हुआ था । अपीलार्थी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि नवंबर, 2009 में प्रत्यर्थी पुन: अपनी ससुराल आई थी तथापि, उसने यह भी कहा है कि प्रत्यर्थी बार-बार अपने मायके चली जाती थी । पक्षकारों के अभिवचनों और साक्ष्य के आधार पर इस बारे में कोई भी विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी ने तारीख 23 अक्तूबर, 2010 को एक बच्चे को जन्म दिया था । अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी तारीख़ 8 फरवरी, 2010 को अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी जिसका यह अर्थ है कि प्रत्यर्थी ने अपनी ससुराल छोड़ने से पूर्व भी न केवल अपीलार्थी के साथ वैवाहिक नातेदारी निभाई थी अपितु पक्षकारों के बीच वैवाहिक सहवास के कारण उसने गर्भ भी धारण किया था । अपीलार्थी ने यह अभिकथन नहीं किया है कि बच्चे का जन्म उनके वैवाहिक सहवास से नहीं हुआ था । अत: अभिलेख पर यह पुख्ता और स्वीकृत साक्ष्य है कि प्रत्यर्थी ने दो बार गर्भ धारण किया था । प्रथम अवसर पर किन्हीं कारणों से गर्भपात हो गया था तथापि, इसके पश्चात् वह पुन: गर्भवती हुई थी और उसने पुन: एक बच्चे को जन्म दिया था । अत: यह बात कि प्रत्यर्थी ने सहवास से इनकार किया था या अपीलार्थी के साथ वैवाहिक कर्तव्यों को पूरा करने से इनकार किया था, पूर्णतया असंभाव्य प्रतीत होती है और इसलिए खारिज किए जाने योग्य है । किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलन के अभिकथन भी किसी अकाट्य साक्ष्य द्वारा साबित नहीं हुए हैं । न तो वादी के साक्षियों के साक्ष्य में और न ही दोनों पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए अन्य किसी अभिलेख/दस्तावेजों से यह साबित हुआ है कि तारीख 8 फरवरी, 2010 तक किसी समय प्रत्यर्थी या उसके कुटुंब का कोई सदस्य पुलिस थाने गया था या वे दांडिक मामले को दर्ज कराने के

लिए राज्य के किसी कर्मचारी के पास गए थे । वर्तमान मामले में यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अपीलार्थी द्वारा स्वयं ही तारीख 28 जून, 2010 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया गया था । जहां प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध कोई रिपोर्ट लिखाई गई हो वहां किसी पति के लिए यह पूर्णतया असंभव होगा कि वह दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की ईप्सा करे और जहां उसके साथ इस सीमा तक क्रूरता बरती गई हो कि उसके लिए वैवाहिक नातेदारी को जारी रखना कठिन बन जाए । न्यायालय को यह भी प्रतीत होता है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के वाद के लंबन के दौरान तारीख 23 अक्तूबर, 2010 को बच्चे का जन्म हुआ था । इसके पश्चात् विलंब से अर्थात् जून, 2011 में क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया गया था । घटनाओं का क्रम स्वत: क्रूरता के अभिकथनों को असंभव बना देता है । दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी अपने मायके में रह रही थी । इसके एक वर्ष के पश्चात् तारीख 8 फरवरी, 2010 से पूर्व अवधि के संबंध में क्रूरता के अभिकथनों के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया गया था । अत: न्यायालय का यह मत है कि यद्यपि पति और पत्नी के बीच कुछ विवाद थे तथापि, इसके पश्चात् भी चूंकि प्रत्यर्थी ने तारीख 8 फरवरी, 2010 से अपने मायके में अपने माता-पिता के साथ रहना आरंभ कर दिया था इसलिए अपीलार्थी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन दिया था तथापि, समय अंतराल के साथ और बाद में अपीलार्थी ने अपना मन परिवर्तित किया और वैवाहिक नातेदारी जारी रखने का प्रयत्न किया । प्रथमत: उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन प्रतिसंहृत कर लिया और लगभग एक वर्ष के पश्चात् उसने क्रूरता और अभित्यजन दोनों आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध करते हुए आवेदन फाइल किया । तथ्यत: भारतीय दंड संहिता की धारा 498क का अपराध करने के बारे में अभिकथन करने वाली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जो तारीख 1 फरवरी, 2013 को वाद के लंबन के दौरान फाइल की गई थी, क्रूरता के अभिकथनों का समर्थन नहीं करती क्योंकि यह रिपोर्ट अपीलार्थी और

प्रत्यर्थी के पृथक् रहने के लगभग 3 वर्ष के पश्चात् फाइल की गई थी । चूंकि यह कहा गया है कि दांडिक मामला लंबित है इसलिए न्यायालय उसकी पत्नी पर क्रूरता के अभिकथन के संबंध में कोई मत व्यक्त नहीं कर रहा है । इन अभिकथनों की परीक्षा करने के सीमित प्रयोजन के लिए कि पत्नी ने मिथ्या अन्तर्वलन की धमकी दी थी, न्यायालय का यह मत है कि यह तथ्य स्वत: किसी दांडिक मामले में अपीलार्थी के मिथ्या अन्तर्वलन के अभिवचन का समर्थन नहीं करता । क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए कोई डिक्री तब तक मंजूर नहीं की जा सकती जब तक कि पक्षकार विनिर्दिष्ट अनुतोष की मांग नहीं करते और जब तक कि ऐसा कथन अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा साबित नहीं हो जाता । वर्तमान मामले में अभिवचन विनिर्दिष्ट नहीं हैं और अस्पष्ट भी हैं । क्रूरता की घटनाओं के बारे में प्रमितत: और विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन किए जाने चाहिए । मात्र इस प्रकार का कथन कि क्रूरता बरती गई थी, पर्याप्त नहीं है । न्यायालय का यह मत है कि परित्यजन के आधार पर डिक्री मंजूर करने के लिए अपीलार्थी का पक्षकथन कुटुंब न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज किया गया है, क्योंकि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार भी प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपनी ससुराल छोड़ कर गई थी जबकि परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए वाद तारीख 20 जून, 2011 को फाइल किया गया था । उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में जिसके द्वारा वादी का वाद खारिज किया गया है, हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की एफ. ए. एम. सं. 90.

2011 के सिविल वाद सं. 53ए में कुटुंब न्यायालय, कोरबा के न्यायाधीश द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 2015 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विकास पांडे

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनिल त्रिपाठी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मनिन्दर मोहन श्रीवास्तव ने दिया ।

न्या. श्रीवास्तव – यह अपील 2011 के सिविल वाद सं. 53ए में कुटुंब न्यायालय, कोरबा के न्यायाधीश द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 2015 को पारित उस आक्षेपित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-वादी का क्रूरता तथा परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है ।

2. अपीलार्थी ने अन्य बातों के साथ-साथ इन अभिवचनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध करते हुए एक वाद फाइल किया था कि यद्यपि पक्षकारों के विवाह के पश्चात् जो तारीख 17 अप्रैल, 2009 को हुआ था, आरंभत: प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी के साथ शांतिपूर्वक रहती रही तथापि, बाद में उसने उसके माता-पिता के साथ लड़ाई-झगड़ा करना आरंभ कर दिया और उनके साथ क्रूरता भी बरती । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी किसी को भी सूचना दिए बिना बार-बार अपने माता-पिता के घर चली जाती थी और अत्यधिक खुशामद के पश्चात् ही वह अपनी ससुराल लौट कर वापस आती थी । यह भी अभिवचन किया गया है कि माता-पिता के मकान पर जाने के विवाद्यक पर प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने माता-पिता को बुलाकर हमला भी किया था और अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों को यह धमकी दी थी कि वह उन्हें दहेज के मामले में मिथ्या फंसाएगी । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी पर अपने माता-पिता से पृथक् रहने के लिए जोर देती थी जिसके कारण पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था । तारीख 8 फरवरी, 2010 को प्रत्यर्थी यह कहकर अपने माता-पिता के घर गई थी कि वह अपनी शैक्षिक परीक्षा में बैठने की इच्छुक है और उसके पश्चात् वह अनेक प्रयासों के बावजूद अपनी ससुराल वापस नहीं आई । विवाद को सुलझाने के लिए मामला समुदाय के समक्ष रखा गया था जहां सलाह दिए जाने के बावजूद प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी ससुराल लौट कर वापस नहीं आई । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया था और इन कार्यवाहियों में भी प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह कहा

कि वह बच्चे के जन्म के पश्चात् अपनी ससुराल वापस जाएगी किन्तु वह कभी भी वापस नहीं आई । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को वैवाहिक सहवास से वंचित किया और क्रूरता तथा परित्यजन के इन अभिवचनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया गया था ।

3. प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में क्रूरता के सभी कथनों से इनकार करते हुए यह कहा है कि अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्य धन की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता बरतते थे और इस आधार पर भी क्रूरता बरतते थे कि विवाह के समय समुचित तोहफे नहीं दिए गए थे । यह भी अभिकथन किया गया है कि उसका पति दूसरा विवाह करना चाहता था और इसलिए वह प्रत्यर्थी में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रखता था । यह भी अभिकथन किया गया है कि जब वह अपनी ससुराल में रह रही थी तो उसका गर्भपात कराया गया था । उसने यह अभिवचन भी किया है कि जब भी पक्षकारों को साथ-साथ रहने के लिए सलाह दी गई तो हर बार अपीलार्थी ने उस पर यह लिख कर देने के लिए बल दिया कि यदि उसके साथ कुछ गलत होता है तो पति और उसके कुटुंब के सदस्य जिम्मेदार नहीं ठहराए जाएंगे । बाद में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अपीलार्थी द्वारा आवेदन वापस ले लिया गया था क्योंकि अपीलार्थी प्रत्यर्थी-पत्नी को अपने साथ रखने के लिए दिलचस्पी नहीं रखता था । अंततः विद्वान् कुटुंब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की डिक्री का अनुरोध करते हुए वाद फाइल किया गया था ।

4. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने निम्नलिखित दो विवाद्यक विरचित किए, जो इस प्रकार हैं :-

(स्थानीय भाषा का लोप किया गया ....)

5. वादी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए पांच साक्षियों की परीक्षा कराई । प्रतिवादी ने जवाब में 4 साक्षियों की परीक्षा कराई । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों की पृष्ठभूमि में अभिलेख पर के मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य की परीक्षा करने के

पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि क्रूरता का पक्षकथन साबित नहीं हुआ है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने परित्यजन के विवाद्यक के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि वाद स्वत: अपरिपक्व है ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री की वैधता और विधिमान्यता को आक्षेपित करते हुए यह दलील दी है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने विवाह-विच्छेद के अनुरोध के लिए आवेदन को खारिज करने में विधि और तथ्य की गंभीर गलती की है, यद्यपि अपीलार्थी ने समुचित अभिवचनों और पुख्ता साक्ष्य द्वारा क्रूरता साबित कर दी थी । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादपत्र में उल्लिखित यह विनिर्दिष्ट अभिवचन कि प्रत्यर्थी उसके माता-पिता के साथ झगड़ा करती थी और उसने अपीलार्थी पर हमला भी किया था, साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से बताया गया है जो कि अकाट्य रहा है । यह भी दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध यह साबित हो गया है कि उसने दहेज मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी दी थी और प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपने अभिवचनों में यह स्वीकार किया है कि वर्ष 2013 में सिविल कार्यवाहियों के लंबन के दौरान उसने एक दांडिक मामला भी संस्थित किया था और यह बात किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने के वादी के पक्षकथन को पूर्णतया साबित करती है । इससे अपीलार्थी को गंभीर मानसिक व्यथा हुई थी और इसलिए क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के अनुरोध के लिए यह एक कारण भी है । इसके अतिरिक्त वादी का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी की पत्नी होने के नाते सहवास सहित वैवाहिक दायित्वों को पूरा करने के लिए आबद्ध थी । विशेष रूप से यह अभिवचन किया गया और साबित किया गया था कि वाद फाइल करने की तारीख तक ऐसे दायित्व विद्यमान होने के बावजूद प्रत्यर्थी ने इन दायित्वों को निभाने से इनकार कर दिया क्योंकि वह तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई और इसके पश्चात् अथक प्रयासों के बावजूद कभी नहीं लौटी । वादी ने इस संबंध में स्वयं अर्थात् राजेश कुमार चन्द्र, पी. डब्ल्यू. 1 के साक्ष्य और समुदाय की मुखिया कुसुम

लता चन्द्र, पी. डब्ल्यू. 4 के साक्ष्य का इस आशय के लिए अवलंब लिया है कि अपीलार्थी द्‌वारा प्रत्यर्थी को उसकी ससुराल वापस लाने के लिए कोशिश की गई थी तथापि, उसने इसे स्वीकार नहीं किया और अपीलार्थी के साथ जाने से इनकार कर दिया । अपीलार्थी की सद्भावनाएं इस तथ्य से भी प्रदर्शित होती हैं कि उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया था और ये कार्यवाहियां भी प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्‌वारा किए गए इन कथनों को दृष्टिगत करते हुए वापस ले ली गई थीं कि बच्चे के जन्म के पश्चात् वह अपनी ससुराल वापस आ जाएगी और इसके पश्चात् वह कभी भी वापस नहीं आई और जब अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने उसे वापस लाने के लिए प्रयास किए तब उसने किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी दी ।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्‌वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि न केवल क्रूरता के संबंध में अभिवचन अस्पष्ट हैं अपितु इस संबंध में पेश किया गया साक्ष्य किसी विनिर्दिष्ट ब्यौरे के बिना है और असंभाव्यता पूर्ण है । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी ने न केवल इस बारे में अभिवचन किया है अपितु यह साबित भी किया है कि अपीलार्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने धन की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता बरती थी और उसके साथ क्रूरता इस सीमा तक बरती गई थी कि जब वह अपनी ससुराल में रह रही थी तो उसका गर्भपात कराया गया था और इसलिए ये अभिकथन कि प्रत्यर्थी ने क्रूरता बरती थी, मिथ्या है । अपीलार्थी कभी भी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अनुरोध में दिलचस्पी नहीं रखता था और इसलिए उसके द्‌वारा फाइल किया गया आवेदन प्रतिसंहृत कर लिया गया था । यह भी दलील दी गई है कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए सामुदायिक-पंचायत से सम्पर्क किया था तथापि, उसने ऐसा स्वयं द्‌वारा वैवाहिक कर्तव्यों की स्वतंत्रता से किया था ।

8. हमने पक्षकारों के विद्‌वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

9. वादपत्र में यथा उल्लिखित क्रूरता के संबंध में ये अभिवचन किए गए हैं कि विवाह के तुरन्त पश्चात् प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के माता-पिता से लड़ाई-झगड़ा करना आरंभ कर दिया था और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अक्सर अपने मायके चली जाती थी और वह भी कोई इत्तिला दिए बिना और वह अत्यधिक खुशामद करने के बाद वापस आती थी । वादपत्र में एक मुख्य आधार यह उल्लिखित किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपने माता-पिता को बुलाकर हमला किया था और दहेज मामले में मिथ्या अन्तर्वलित करने की धमकी भी दी थी । क्रूरता के संबंध में यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी अपने पति पर उसके माता-पिता से पृथक् रहने के लिए बल देती थी । अंततः यह भी अभिवचन किया गया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को सहवास से वंचित किया था जो कि क्रूरता के समतुल्य है ।

10. यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान मामले में स्वीकृततः विवाह तारीख 17 अप्रैल, 2009 को सम्पन्न हुआ था और प्रत्यर्थी पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 से अपीलार्थी के साथ नहीं रह रही है । यद्यपि दोनों ही पक्षकारों ने इस बारे में भिन्न-भिन्न कारण बताए हैं कि प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपने मायके क्यों चली गई थी, तथापि, यह तथ्य रह जाता है कि प्रत्यर्थी पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 के पश्चात् से अपीलार्थी-पति के साथ नहीं रह रही है । अतः क्रूरता से संबंधित सभी अभिकथन इस संक्षिप्त अवधि से संबंधित हैं कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी, पति और पत्नी के रूप में तारीख 17 अप्रैल, 2009 से तारीख 8 फरवरी, 2010 तक अर्थात् 10 मास से भी कम अवधि तक साथ-साथ रहे हैं तथापि, क्रूरता से संबंधित सभी अभिवचन अर्थात् माता-पिता के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार, बिना किसी इत्तिला के बार-बार अपने मायके चले जाना और अत्यधिक खुशामद करने के पश्चात् वापस आना, पति के ऊपर हमला करना, मिथ्या अन्तर्वलन की धमकी देना, पृथक् रहने पर जोर देना और वैवाहिक सहवास से वंचित करना, पूर्णतया अस्पष्ट हैं । ये अभिवचन कि प्रत्यर्थी बिना किसी कारण के अपीलार्थी के माता-पिता

से लड़ाई-झगड़ा करती थी और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करती थी, किसी विनिर्दिष्ट अभिवचन के बिना किए गए हैं । साक्ष्य में यह आया है कि प्रत्यर्थी का मायका केवल 10 किलोमीटर दूर है । वादपत्र के पैरा 3 में यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अक्सर अपने मायके चली जाती थी और राजेश कुमार चन्द्र पी. डब्ल्यू. 1 ने अपने साक्ष्य में भी बार-बार चले जाने के समय के बारे में विनिर्दिष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है और अस्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह अपने मायके चली जाती थी । दस माह की संक्षिप्त अवधि में किस मास में और किस तारीख को वह अपने मायके गई थी, अपीलार्थी द्वारा अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं कहा गया है । अपीलार्थी के माता और पिता ने भी जिनकी वादी साक्षियों के रूप में परीक्षा कराई गई है, उसी साक्ष्य को दोहराया है जो अपीलार्थी द्वारा कहा गया है और उन्होंने भी इस संबंध में कोई विनिर्दिष्ट ब्यौरा नहीं दिया है ।

11. हमले का अभिकथन भी किया गया है । तथापि, तारीख या मास जब यह हमला किया गया था और यह हमला किस प्रकार किया गया था और प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया की गई थी, इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन नहीं किया गया है । अपीलार्थी-राजेश कुमार चन्द्र-पी. डब्ल्यू. 1 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी उसके गुप्तांग पर लात मारती थी जिसके परिणामस्वरूप उसके ख़ीसों पर सूजन आ जाती थी तथापि, अपीलार्थी द्वारा इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी ने उपचार करने का चिकित्सा प्रमाणपत्र या इस बारे में कि किस चिकित्सक द्वारा उपचार किया गया था, कोई प्रमाणपत्र दाखिल नहीं किया है । ऊपर यथा अभिकथित उस पर हमला करने के बारे में किए गए अभिकथन अस्पष्ट हैं क्योंकि ऐसी किसी घटना की तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया गया है ।

12. इस अभिकथन को भी कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को वैवाहिक नातेदारी/सहवास और शारीरिक मांगों से वंचित किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों पक्षकारों द्वारा इस बारे में प्रभावी साक्ष्य दिया गया है कि प्रत्यर्थी गर्भवती हो गई थी तथापि, बाद में

गर्भपात करा दिया गया था । अपीलार्थी ने अपने साक्ष्य के पैरा 8 में यह कहा है कि 2009 के अक्तूबर मास में प्रत्यर्थी का गर्भपात कराया गया था और प्रत्यर्थी ने पति के विरुद्ध आरोप लगाने आरंभ कर दिए थे । इससे यह उपदर्शित होता है कि अक्तूबर, 2009 के पूर्व पक्षकारों के बीच सहवास हुआ था । अपीलार्थी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि नवंबर, 2009 में प्रत्यर्थी पुन: अपनी ससुराल आई थी तथापि, उसने यह भी कहा है कि प्रत्यर्थी बार-बार अपने मायके चली जाती थी ।

13. पक्षकारों के अभिवचनों और साक्ष्य के आधार पर इस बारे में कोई भी विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी ने तारीख 23 अक्तूबर, 2010 को एक बच्चे को जन्म दिया था । अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपनी ससुराल छोड़ कर चली गई थी जिसका यह अर्थ है कि प्रत्यर्थी ने अपनी ससुराल छोड़ने से पूर्व भी न केवल अपीलार्थी के साथ वैवाहिक नातेदारी निभाई थी अपितु पक्षकारों के बीच वैवाहिक सहवास के कारण उसने गर्भ भी धारण किया था । अपीलार्थी ने यह अभिकथन नहीं किया है कि बच्चे का जन्म उनके वैवाहिक सहवास से नहीं हुआ था । अत: अभिलेख पर यह पुख्ता और स्वीकृत साक्ष्य है कि प्रत्यर्थी ने दो बार गर्भधारण किया था । प्रथम अवसर पर किन्हीं कारणों से गर्भपात हो गया था तथापि, इसके पश्चात् वह पुन: गर्भवती हुई थी और उसने पुन: एक बच्चे को जन्म दिया था । अत: यह बात कि प्रत्यर्थी ने सहवास से इनकार किया था या अपीलार्थी के साथ वैवाहिक कर्तव्यों को पूरा करने से इनकार किया था, पूर्णतया असंभाव्य प्रतीत होती है और इसलिए खारिज किए जाने योग्य है ।

14. किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलन के अभिकथन भी किसी अकाट्य साक्ष्य द्वारा साबित नहीं हुए हैं । न तो वादी के साक्षियों के साक्ष्य में और न ही दोनों पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए अन्य किसी अभिलेख/दस्तावेजों से यह साबित हुआ है कि तारीख 8 फरवरी, 2010 तक किसी समय प्रत्यर्थी या उसके कुटुंब का कोई सदस्य पुलिस थाने गया था या वे दांडिक मामले को दर्ज कराने के

लिए राज्य के किसी कर्मचारी के पास गए थे । वर्तमान मामले में यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अपीलार्थी द्वारा स्वयं ही तारीख 28 जून, 2010 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया गया था । जहां प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध कोई रिपोर्ट लिखाई गई हो वहां किसी पति के लिए यह पूर्णतया असंभव होगा कि वह दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की ईप्सा करे और जहां उसके साथ इस सीमा तक क्रूरता बरती गई हो कि उसके लिए वैवाहिक नातेदारी को जारी रखना कठिन बन जाए । हमें यह भी प्रतीत होता है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के वाद के लंबन के दौरान तारीख 23 अक्तूबर, 2010 को बच्चे का जन्म हुआ था । इसके पश्चात् विलंब से अर्थात् जून, 2011 में क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया गया था । घटनाओं का क्रम स्वत: क्रूरता के अभिकथनों को असंभव बना देता है । दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी अपने मायके में रह रही थी । इसके एक वर्ष के पश्चात् तारीख 8 फरवरी, 2010 से पूर्व अवधि के संबंध में क्रूरता के अभिकथनों के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया गया था । अत: हमारा यह मत है कि यद्यपि पति और पत्नी के बीच कुछ विवाद थे तथापि, इसके पश्चात् भी चूंकि प्रत्यर्थी ने तारीख 8 फरवरी, 2010 से अपने मायके में अपने माता-पिता के साथ रहना आरंभ कर दिया था इसलिए अपीलार्थी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन दिया था तथापि, समय अंतराल के साथ और बाद में अपीलार्थी ने अपना मन परिवर्तित किया और वैवाहिक नातेदारी जारी रखने का प्रयत्न किया । प्रथमत: उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन प्रतिसंहृत कर लिया और लगभग एक वर्ष के पश्चात् उसने क्रूरता और अभित्यजन दोनों आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध करते हुए आवेदन फाइल किया । तथ्यत: भारतीय दंड संहिता की धारा 498क का अपराध करने के बारे में अभिकथन करने वाली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट जो तारीख 1 फरवरी, 2013 को वाद के लंबन के दौरान फाइल की गई थी, क्रूरता के अभिकथनों का समर्थन नहीं करती क्योंकि यह

रिपोर्ट अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के पृथक् रहने के लगभग 3 वर्ष के पश्चात् फाइल की गई थी । चूंकि यह कहा गया है कि दांडिक मामला लंबित है इसलिए हम उसकी पत्नी पर क्रूरता के अभिकथन के संबंध में कोई मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं । इन अभिकथनों की परीक्षा करने के सीमित प्रयोजन के लिए कि पत्नी ने मिथ्या अन्तर्वलन की धमकी दी थी, हमारा यह मत है कि यह तथ्य स्वत: किसी दांडिक मामले में अपीलार्थी के मिथ्या अन्तर्वलन के अभिवचन का समर्थन नहीं करता ।

15. क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए कोई डिक्री तब तक मंजूर नहीं की जा सकती जब तक कि पक्षकार विनिर्दिष्ट अनुतोष की मांग नहीं करते और जब तक कि ऐसा कथन अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा साबित नहीं हो जाता । वर्तमान मामले में अभिवचन विनिर्दिष्ट नहीं हैं और अस्पष्ट भी हैं । क्रूरता की घटनाओं के बारे में प्रमितत: और विनिर्दिष्ट रूप से अभिवचन किए जाने चाहिए । मात्र इस प्रकार का कथन कि क्रूरता बरती गई थी, पर्याप्त नहीं है ।

16. हमारा यह मत है कि परित्यजन के आधार पर डिक्री मंजूर करने के लिए अपीलार्थी का पक्षकथन कुटुंब न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज किया गया है, क्योंकि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार भी प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 8 फरवरी, 2010 को अपनी ससुराल छोड़ कर गई थी जबकि परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए वाद तारीख 20 जून, 2011 को फाइल किया गया था ।

17. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए हम विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में जिसके द्वारा वादी का वाद खारिज किया गया है, हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं हैं ।

18. तद्नुसार अपील खारिज की जाती है । अपीली डिक्री तैयार की जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

बी. टी. अगाशे

बनाम

श्रीमती आशा देवी शर्मा

(2003 की प्रथम अपील सं. 3)

तारीख 26 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 111 – किराएदारी – किराएदारी परिसर पट्टे पर लिया जाना – किराएदार द्‌वारा संपत्ति के मालिक को अग्रिम रूप में 50,000/- रुपए की धनराशि दो किस्तों में दी जानी – किराएदार को सरकार से संस्था खोलने की अनुमति न दी जानी – किराएदार द्‌वारा अग्रिम धनराशि की वापसी के लिए वाद – संपत्ति मालिक की 56,000/- रुपए की किराए की धनराशि किराएदार पर बकाया होना – किराएदार अग्रिम धनराशि को वापस पाने का हक़दार नहीं है ।

अपीलार्थी-वादी के अनुसार उसने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के साथ किराएदारी का करार किया था जिसके द्‌वारा उसे ग्राम छंगोराभाटा, रायपुर में "मोहिनी पैलेस" के नाम से आवास (स्थान) उपलब्ध कराने का प्रस्ताव किया गया था । उक्त आवास में एक हाल और कमरे थे जिन्हें 8,000/- रुपए की किराएदारी पर अपीलार्थी को किराए पर देना स्वीकार किया गया था और इस संबंध में एक करार निष्पादित किया गया था । अपीलार्थी ने उक्त करार के निबंधनों के अनुसरण में तारीख 29 अक्तूबर, 1998 को 25,000/- रुपए की अग्रिम धनराशि दी थी । चूंकि इस आवास में कतिपय मरम्मत किए जाने की आवश्यकता थी इसलिए आवास का कब्जा तारीख 1 अप्रैल, 1999 को दिया गया था । चूंकि इस आवास में मरम्मत के लिए खर्चों की आवश्यकता थी इसलिए अपीलार्थी से 25,000/- रुपए की अतिरिक्त धनराशि का संदाय करने के लिए कहा गया था जो कि अपीलार्थी ने अपने पति के द्‌वारा प्रत्यर्थी को संदत्त की थी । अपीलार्थी इस आवास में औद्‌योगिक प्रशिक्षण संस्थान खोलना

चाहता था और उसने इसके लिए संबंधित प्राधिकारियों से समुचित मंजूरी देने के लिए आवेदन किया था । केन्द्रीय श्रम और नियोजन विभाग के एक दल द्वारा स्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् आवास अनुपयुक्त होने के आधार पर मंजूरी देने से इनकार किया गया था । अपीलार्थी ने तारीख 26 जुलाई, 1999 को आवास का कब्जा प्रत्यर्थी को वापस दे दिया था और अपीलार्थी ने ब्याज के साथ 50,000/- रुपए की जमा धनराशि वापस करने के लिए सूचना जारी की थी । प्रत्यर्थी द्वारा कोई उत्तर न देने पर विचारण न्यायालय के समक्ष वाद फाइल किया गया था जो कि खारिज कर दिया गया । यह अपील 2001 के सिविल वाद सं. 60बी में चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, रायपुर (सी. जी.) द्वारा तारीख 10 अक्तूबर, 2002 को पारित उस निर्णय/डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसमें उक्त न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी द्वारा 51,320/- रुपए की धनराशि की वसूली के लिए फाइल किए गए वाद को खारिज किया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी का पक्षकथन दस्तावेज प्रदर्श पी-1 पर आधारित है । चूंकि अपीलार्थी द्वारा इस दस्तावेज का अवलंब लिया गया है इसलिए यह दस्तावेज उसके ऊपर आबद्धकर है । अपीलार्थी, प्रदर्श पी-1 के अनुसार 1 जनवरी, 1999 से 8,000/- रुपए की प्रतिमास दर पर किराएदार बना था । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने यह आवास तारीख 1 अप्रैल, 1999 को लिया था तथापि, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 और 92 के अनुसार वहां मौखिक साक्ष्य अनुज्ञेय नहीं है जहां करार के निबंधन अभिलिखित किए गए हों और इसलिए विचारण न्यायालय के समक्ष दस्तावेज प्रदर्श पी-1 से यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी ने करार किया था और किराएदारी तारीख 1 जनवरी, 1999 से आरंभ हुई थी । अपीलार्थी के कथनानुसार उसने तारीख 26 जुलाई, 1999 को परिसर खाली करने के लिए प्रत्यर्थी को सूचना दी थी । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अनुसार पट्टा मास-प्रतिमास समझा जाएगा । जब अपीलार्थी द्वारा तारीख 26 जुलाई, 1999 को प्रत्यर्थी को सूचना दी गई थी तब किराएदारी तारीख 31 अगस्त, 1999 को पर्यवसित हो गई थी क्योंकि तारीख 26 जुलाई, 1999 से 15 दिवसों की संगणना की जाएगी और इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि

वर्तमान मामले में किराएदारी तारीख 31 अगस्त, 1999 को पर्यवसित हुई थी । प्रत्यर्थी का परिसर तारीख 1 जनवरी, 1999 को किराए पर लिया गया था और अभिलेख के अनुसार तारीख 1 जनवरी, 1999 से तारीख 31 मार्च, 1999 तक कोई किराया संदत्त नहीं किया गया था, जो कि 24,000/- रुपए बनता है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी और उसके पति से तारीख 1 अप्रैल, 1999 से दो आवास किराए पर लिए गए थे जिनका मासिक किराया 16,000/- रुपए था और यह किराया केवल 3 मास अर्थात् अप्रैल, मई और जून के लिए 48,000/- रुपए के रूप में संदत्त किया गया था । इस प्रकार से जुलाई और अगस्त का किराया 32,000/- रुपए और जनवरी से मार्च का किराया 24,000/- रुपए वर्तमान प्रत्यर्थी को देय था और प्रत्यर्थी की यह धनराशि बकाया थी जो कि 56,000/- रुपए बनती है । साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि अग्रिम धनराशि दो बार संदत्त की गई थी ; प्रथमत: तारीख 29 अक्तूबर, 1998 को 25,000/- रुपए और द्वितीयत: तारीख 1 अप्रैल, 1999 को 25,000/- रुपए अर्थात् कुल 50,000/- रुपए की धनराशि संदत्त की गई थी । अपीलार्थी ने 50,000/- रुपए की अग्रिम धनराशि के लिए दावा किया है तथापि, अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि चूंकि किराए की 56,000/- रुपए की धनराशि बकाया थी इसलिए विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी से कोई धनराशि वसूलनीय नहीं है । विचारण न्यायालय का निष्कर्ष मामले की तथ्यात्मक स्थिति और विधिक पहलू पर आधारित है जिसमें अपील की अधिकारिता का अवलंब लेते हुए हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है । अपील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलें स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं । (पैरा 6, 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2003 की प्रथम अपील सं. 3.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री किशोर भादुड़ी और सुश्री जूही जायसवाल
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री मनीष ठाकुर और आशीष कुमार वलेचा

न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा – यह अपील 2001 के सिविल वाद

सं. 60बी में चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, रायपुर (सी. जी.) द्वारा तारीख 10 अक्तूबर, 2002 को पारित उस निर्णय/डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसमें उक्त न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी द्वारा 51,320/- रुपए की धनराशि की वसूली के लिए फाइल किए गए वाद को खारिज किया है ।

2. अपीलार्थी-वादी के अनुसार उसने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के साथ किराएदारी का करार किया था जिसके द्वारा उसे ग्राम छंगोराभाटा, रायपुर में "मोहिनी पैलेस" के नाम से आवास (स्थान) उपलब्ध कराने का प्रस्ताव किया गया था । उक्त आवास में एक हाल और कमरे थे जिन्हें 8,000/- रुपए की किराएदारी पर अपीलार्थी को किराए पर देना स्वीकार किया गया था और इस संबंध में एक करार निष्पादित किया गया था । अपीलार्थी ने उक्त करार के निबंधनों के अनुसरण में तारीख 29 अक्तूबर, 1998 को 25,000/- रुपए की अग्रिम धनराशि दी थी । चूंकि इस आवास में कतिपय मरम्मत किए जाने की आवश्यकता थी इसलिए आवास का कब्जा तारीख 1 अप्रैल, 1999 को दिया गया था । चूंकि इस आवास में मरम्मत के लिए खर्चों की आवश्यकता थी इसलिए अपीलार्थी से 25,000/- रुपए की अतिरिक्त धनराशि का संदाय करने के लिए कहा गया था जो कि अपीलार्थी ने अपने पति के द्वारा प्रत्यर्थी को संदत्त की थी । अपीलार्थी इस आवास में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान खोलना चाहता था और उसने इसके लिए संबंधित प्राधिकारियों से समुचित मंजूरी देने के लिए आवेदन किया था । केन्द्रीय श्रम और नियोजन विभाग के एक दल द्वारा स्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् आवास अनुपयुक्त होने के आधार पर मंजूरी देने से इनकार किया गया था । अपीलार्थी ने तारीख 26 जुलाई, 1999 को आवास का कब्जा प्रत्यर्थी को वापस दे दिया था और अपीलार्थी ने ब्याज के साथ 50,000/- रुपए की जमा धनराशि वापस करने के लिए सूचना जारी की थी । प्रत्यर्थी द्वारा कोई उत्तर न देने पर विचारण न्यायालय के समक्ष वाद फाइल किया गया था जो कि खारिज कर दिया गया ।

3. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं :-

(i) विचारण न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल

रहा कि प्रदर्श पी-2 और प्रदर्श पी-3 द्वारा 50,000/- रुपए की जमा धनराशि के तथ्य को साबित कर दिया गया है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत मामले की तथ्यात्मक स्थिति के प्रतिकूल है ।

(ii) विचारण न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि दो व्यक्तियों के नाम में किराएदारी का विभक्तीकरण अपीलार्थी द्वारा दी गई अग्रिम धनराशि के लिए कोई बाधा सृजित नहीं करता ।

(iii) विचारण न्यायालय को प्रत्यर्थी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना चाहिए था क्योंकि प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है ।

(iv) चूंकि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया है, इसलिए विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अपास्त किए जाने योग्य है ।

4. इसके प्रतिकूल राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय का निष्कर्ष साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है जिसमें इस न्यायालय द्वारा अपील की अधिकारिता का अवलंब लेते हुए कोई हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और उस अभिलेख का परिशीलन किया जिसमें निर्णय और डिक्री पारित की गई है ।

6. अपीलार्थी का पक्षकथन दस्तावेज प्रदर्श पी-1 पर आधारित है । चूंकि अपीलार्थी द्वारा इस दस्तावेज का अवलंब लिया गया है इसलिए यह दस्तावेज उसके ऊपर आबद्धकर है । अपीलार्थी, प्रदर्श पी-1 के अनुसार 1 जनवरी, 1999 से 8,000/- रुपए की प्रतिमास दर पर किराएदार बना था । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने यह आवास तारीख 1 अप्रैल, 1999 को लिया था तथापि, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 और 92 के अनुसार वहां मौखिक साक्ष्य अनुज्ञेय नहीं है जहां करार के निबंधन अभिलिखित किए गए हों और इसलिए विचारण न्यायालय के

समक्ष दस्तावेज प्रदर्श पी-1 से यह साबित हो गया है कि अपीलार्थी ने करार किया था और किराएदारी तारीख 1 जनवरी, 1999 से आरंभ हुई थी । अपीलार्थी के कथनानुसार उसने तारीख 26 जुलाई, 1999 को परिसर खाली करने के लिए प्रत्यर्थी को सूचना दी थी । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अनुसार पट्टा मास-प्रतिमास समझा जाएगा । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 इस प्रकार है :-

> "106. **लिखित संविदा पर स्थानीय प्रथा के अभाव में कुल पट्टों की कालावधि** – (1) तत्प्रतिकूल संविदा या स्थानीय विधि या प्रथा न हो तो कृषि या विनिर्माण के प्रयोजन के लिए स्थावर संपत्ति का पट्टा ऐसा वर्षानुवर्षी पट्टा समझा जाएगा जो या तो पट्टा-कर्ता या पट्टेदार द्वारा 6 मास की सूचना द्वारा पर्यवसेय है और किसी अन्य प्रयोजन के लिए स्थावर संपत्ति का पट्टा मासानुमासी पट्टा समझा जाएगा जो या तो पट्टा कर्ता या पट्टेदार द्वारा 15 दिन की सूचना द्वारा पर्यवसेय है ।
>
> (2) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (1) में वर्णित कालावधि सूचना की प्राप्ति की तारीख से प्रारंभ होगी ।"

7. जब अपीलार्थी द्वारा तारीख 26 जुलाई, 1999 को प्रत्यर्थी को सूचना दी गई थी तब किराएदारी तारीख 31 अगस्त, 1999 को पर्यवसित हो गई थी क्योंकि तारीख 26 जुलाई, 1999 से 15 दिवसों की संगणना की जाएगी और इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वर्तमान मामले में किराएदारी तारीख 31 अगस्त, 1999 को पर्यवसित हुई थी । प्रत्यर्थी का परिसर तारीख 1 जनवरी, 1999 को किराए पर लिया गया था और अभिलेख के अनुसार तारीख 1 जनवरी, 1999 से तारीख 31 मार्च, 1999 तक कोई किराया संदत्त नहीं किया गया था, जो कि 24,000/- रुपए बनता है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी और उसके पति से तारीख 1 अप्रैल, 1999 से दो आवास किराए पर लिए गए थे जिनका मासिक किराया 16,000/- रुपए था और यह किराया केवल 3 मास अर्थात् अप्रैल, मई और जून के लिए 48,000/- रुपए के रूप में संदत्त किया गया था । इस प्रकार से जुलाई और अगस्त का किराया

32,000/- रुपए और जनवरी से मार्च का किराया 24,000/- रुपए वर्तमान प्रत्यर्थी को देय था और प्रत्यर्थी की यह धनराशि बकाया थी जो कि 56,000/- रुपए बनती है ।

8. साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि अग्रिम धनराशि दो बार संदत्त की गई थी ; प्रथमत: तारीख 29 अक्तूबर, 1998 को 25,000/- रुपए और द्वितीयत: तारीख 1 अप्रैल, 1999 को 25,000/- रुपए अर्थात् कुल 50,000/- रुपए की धनराशि संदत्त की गई थी । अपीलार्थी ने 50,000/- रुपए की अग्रिम धनराशि के लिए दावा किया है तथापि, अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि चूंकि किराए की 56,000/- रुपए की धनराशि बकाया थी इसलिए विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी से कोई धनराशि वसूलनीय नहीं है । विचारण न्यायालय का निष्कर्ष मामले की तथ्यात्मक स्थिति और विधिक पहलू पर आधारित है जिसमें अपील की अधिकारिता का अवलंब लेते हुए हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है । अपील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलें स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं ।

9. तद्नुसार अपीलार्थी के विरुद्ध और प्रत्यर्थी के हक में निम्नलिखित डिक्री पारित की जाती है :–

(i) अपील खर्चे सहित खारिज की जाती है ।

(ii) पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे ।

(iii) अभिवक्ता की फीस, यदि प्रमाणित की जाती है, अनुसूची के अनुसार या प्रमाणपत्र के अनुसार जो भी कम हो, संगणित की जाएगी ।

(iv) तद्नुसार डिक्री बनाई जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य

बनाम

भोला राम शर्मा

(2017 की सिविल याचिका सं. 131)

तारीख 6 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति रामलिंगम सुधाकर और न्यायमूर्ति संजीव कुमार

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 5 [सपठित लैटर्स पेटेंट (जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय) का खंड 12] – लैटर्स पेटेंट अपील फाइल किए जाने में 468 दिनों के विलंब को क्षमा किए जाने के लिए आवेदन – यह तथ्य कि मामले को सरकार के विधि विभाग को उनकी राय अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट किया गया था और मामले पर सरकार के विभिन्न प्रक्रमों पर विचार किया गया था, जिस कारणवश विलंब कारित हुआ – सरकारी निकायों और उनके अभिकरणों और माध्यमों को इस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि उनको विलंब के लिए युक्तिसंगत और स्वीकार्य स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा और उनको सद्भावी प्रयासों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना होगा – उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रायिक स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि फाइल अनेक माह/वर्षों तक प्रक्रिया में अंतर्वलित लालफीताशाही के कारण लंबित बनी रही ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि यह आवेदन 2011 की विशेष रिट याचिका सं. 424 में तारीख 29 मार्च, 2016 को माननीय एकल न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध लैटर्स पेटेंट (जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय) के खंड 12 के अधीन फाइल की गई है । आवेदन अपील फाइल किए जाने में कारित 468 दिनों का विलंब क्षमा किए जाने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया है । आवेदक/राज्य द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 29 मार्च, 2016 को मंजूर कर लिया गया था और प्रत्यर्थी ने माननीय न्यायालय से

निर्णय की प्रति प्राप्त होने के तुरंत पश्चात् मामले का अभिलेख मंगाए जाने की अपेक्षा की और विभिन्न प्रक्रमों पर अभिलेख का परीक्षण किए जाने और उसमें कार्रवाई किए जाने के पश्चात् मामले को विधि विभाग की राय प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट कर दिया गया । उक्त आवेदन में आगे दावा किया गया है कि विधि विभाग ने मामले के अभिलेख के प्रकाश में निर्णय का परीक्षण करने के पश्चात् आवेदकों को माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लैटर्स पेटेंट अपील फाइल करने की सलाह दी थी । उक्त आवेदन में यह निवदेन किया गया है कि विधि विभाग की राय आवेदकों को तारीख 27 अप्रैल, 2017 की संसूचना द्वारा संसूचित की गई और आवेदकों ने विधि विभाग से राय अभिप्राप्त किए जाने के पश्चात् संबद्ध सरकारी काउंसेल से संपर्क किया और तत्पश्चात् अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ अपेक्षित कार्रवाई की गई । यही एकमात्र स्पष्टीकरण है जो आवेदकों द्वारा अपने आवेदन में 468 दिनों के विलंब के पश्चात् अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया गया है । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हम इस बात के प्रति जागरूक हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष एल.पी.ए. फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ लालफीताशाही के अंतर्वलित होने के कारण अवयैक्तिक अफसरशाही को ध्यान में रखते हुए युक्तिसंगत सीमा के भीतर रहते हुए कुछ मात्रा में उदारता बरती जानी चाहिए, किंतु तत्समय उच्चतम न्यायालय द्वारा मुख्य महापोस्ट मास्टर और अन्य बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लि. और एक अन्य वाले मामले में पैरा 12 और 13 में जो कहा गया वह भी समान रूप से उल्लेखनीय है, "यह विवादित नहीं है कि संबद्ध व्यक्ति(यों) परिसीमा की विहित अवधि को सम्मिलित करते हुए इस न्यायालय के संज्ञान में विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से मामला फाइल किए जाने के द्वारा अंतर्वलित विवाद्यक के प्रति जागरूक थे या उसकी पूर्ण जानकारी थी । वे इस बात का दावा नहीं कर सकते कि उनको परिसीमा की कोई पृथक् अवधि उपलब्ध थी जबकि विभाग में न्यायालय की कार्यवाहियों की जानकारी रखने वाले सक्षम व्यक्ति मौजूद थे । हम किसी संभाव्य और स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में एक प्रश्न करते हैं कि विलंब को मात्र इस

कारणवश यांत्रिक रूप से क्यों क्षमा कर दिया जाना चाहिए क्योंकि सरकार या सरकार का कोई खंड हमारे समक्ष उपस्थित मामले में एक पक्ष है । हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि ऐसे मामले जिनमें घोर उपेक्षा कारित नहीं की गई है या सद्भाव की कमी के कारण जानबूझकर कार्रवाई नहीं की गई है, विलंब क्षमा किए जाने के मामले में सारभूत न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ उदारतापूर्वक कुछ छूट अवश्य प्रदान की जानी चाहिए, हमारा यह विचार है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभाग विभिन्न पूर्ववर्ती विनिश्चयों का लाभ नहीं ले सकता । अवयैक्तिक तंत्र और विरासत में मिली हुई अफसरशाही की कार्य प्रणाली के कारण विभिन्न टिप्पण तैयार किए जाने के आधार पर किया गया दावा आधुनिक तकनीक, जिसका प्रयोग किया जा रहा है और जो उपलब्ध है, को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता । नि:संदेह रूप से परिसीमा की विधि सरकार को सम्मिलित करते हुए सभी लोगों को आपस में जोड़ती है । हमारे विचार में यह उचित समय है कि समस्त सरकारी निकायों, उनके अभिकरणों और माध्यमों को सूचित कर दिया जाए कि जब तक कि उनके पास विलंब के संबंध में युक्तिसंगत और स्वीकार्य स्पष्टीकरण न हो और उनके द्वारा सद्भावपूर्वक प्रयास किया गया, इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि इस बाबत साधारण स्पष्टीकरणों को स्वीकार किया जाए कि फाइल प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की अनेकानेक स्थितियों के कारण अनेक माह/वर्षों तक लंबित बनी रही । सरकारी विभाग इस बात को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ विशेष बाध्यता के अधीन होते हैं कि वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन सम्यक् तत्परता और वचनबद्धता के साथ करें । विलंब को क्षमा किया जाना एक अपवादिक स्थिति है और इसे सरकारी विभागों के प्रत्याशित लाभ के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए । विधि प्रत्येक व्यक्ति को एक ही प्रकाश के अंतर्गत संरक्षण प्रदान करता है और इसका प्रयोग कुछ लोगों के लाभ के लिए नहीं किया जाना चाहिए । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि विभाग द्वारा विलंब के लिए सिवाय विभिन्न तारीखों का उल्लेख किए जाने के अलावा कोई उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया, अत: हमारे अनुसार विभाग इस वृहत्तर विलंब को क्षमा किए

जाने के प्रयोजनार्थ किसी स्वीकार्य और तर्कपूर्ण कारण को प्रस्तुत कर पाने में बुरी तरह से विफल रहा है । तद्नुसार, अपीलें विलंब के आधार पर खारिज किए जाने योग्य है ।" इस विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में, जब हम आवेदन में आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए गए स्पष्टीकरण का परीक्षण कर रहे हैं, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह अभिवाक् कि फाइल विधि विभाग को सम्मिलित करते हुए विभिन्न कार्यालयों में प्रक्रियाधीन बनी रही इत्यादि-इत्यादि, 468 दिनों के असामान्य विलंब को स्पष्ट किए जाने के बाबत कोई 'पर्याप्त कारण' नहीं पाते । तद्नुसार, विलंब क्षमा किए जाने के लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 12 एस. सी. सी. 649 = 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6158 : **ईशा भट्टाचार्जी** बनाम **राय हुनतपुर नफर एकेडमी प्रबंध समिति** ;	15
[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 563 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1506 : **मुख्य महापोस्ट मास्टर और अन्य** बनाम **लिविंग मीडिया इंडिया लि. और एक अन्य** ।	20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल याचिका सं. 131.

लैटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन अपील ।

याची की ओर से श्री रंजीत सिंह जामवाल (उप महाधिवक्ता)

प्रत्यर्थी की ओर से श्री नीतिन भसीन

आदेश

यह आवेदन 2011 की विशेष रिट याचिका सं. 424 में तारीख 29 मार्च, 2016 को माननीय एकल न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध

लैटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन फाइल की गई अपील को फाइल किए जाने में कारित 468 दिनों के विलंब को क्षमा किए जाने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया है ।

2. प्रस्तुत आवेदन में आवेदकों/राज्य द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 29 मार्च, 2016 को मंजूर कर लिया गया था और प्रत्यर्थी ने माननीय न्यायालय से निर्णय की प्रति प्राप्त होने के तुरंत पश्चात् मामले का अभिलेख मंगाए जाने की अपेक्षा की और विभिन्न प्रक्रमों पर अभिलेख का परीक्षण किए जाने और उसमें कार्रवाई किए जाने के पश्चात् मामले को विधि विभाग को उनकी राय प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट कर दिया गया था । उक्त आवेदन में आगे यह दावा किया गया है कि विधि विभाग ने मामले के अभिलेख के प्रकाश में निर्णय का परीक्षण करने के पश्चात् आवेदकों को माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लैटर्स पेटेंट अपील फाइल करने की सलाह दी थी । उक्त आवेदन में यह निवदेन किया गया है कि विधि विभाग की राय आवेदकों को तारीख 27 अप्रैल, 2017 की संसूचना द्वारा संसूचित कर दी गई थी । आवेदन में आगे यह प्रकथन किया गया है कि आवेदकों ने विधि विभाग से राय अभिप्राप्त किए जाने के पश्चात् संबद्ध सरकारी काउंसेल से संपर्क किया और तत्पश्चात् अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ अपेक्षित कार्रवाई की गई । यही वह एकमात्र स्पष्टीकरण है जो आवेदकों द्वारा अपने आवेदन में 468 दिनों के विलंब के पश्चात् अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया है । प्रत्यर्थी सूचना तामील किए जाने पर अपने काउंसेल, श्री नीतिन भसीन के माध्यम से उपस्थित हुआ । उसने आक्षेप फाइल किए जाने के द्वारा आवेदक द्वारा फाइल किए गए आवेदन का दृढ़तापूर्वक विरोध किया ।

3. पक्षों के विद्वान् काउंसेल को सुना ।

4. इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि लैटर्स पेटेंट के खंड 12 के अधीन फाइल की गई अपील का निर्णय की तारीख से 60 दिनों के भीतर फाइल किया जाना अपेक्षित होता है और आक्षेपित निर्णय की सत्यापित प्रति अभिप्राप्त किए जाने में व्यय हुई अवधि, यदि कोई हो,

को परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के निबंधनों के अनुसार विवर्जित किया जाना अपेक्षित होता है । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में पूर्वोक्त अवधि को घटाए जाने के पश्चात् भी अपील 428 दिनों द्वारा विलंबित है जो अपने आप में अत्यधिक विलंब है । इन परिस्थितियों में जिस बात पर विचार किया जाना अपेक्षित, वह यह है कि क्या आवेदकों ने इस बात को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया है कि वे समयावधि के भीतर अपील फाइल किए जाने से 'पर्याप्त कारणों' द्वारा प्रवारित थे । उनके द्वारा जो एकमात्र स्पष्टीकरण दिया गया है, वह यह है कि मामले पर विभिन्न प्रक्रमों पर विचार किया गया और तत्पश्चात् विधि विभाग की राय इस बाबत अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्दिष्ट कर दिया गया था कि क्या आक्षेपित निर्णय को क्रियान्वित किया जाना अपेक्षित है या इसके विरुद्ध अपील फाइल की जानी चाहिए । यह अभिकथित किया गया है कि विधि विभाग द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2017 को अपनी राय उपलब्ध करा दी गई थी । विधि विभाग से राय अभिप्राप्त किए जाने के पश्चात् भी अपील फाइल किए जाने में लगभग 5 माह का पुनः विलंब हुआ जिसके बाबत कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

5. आवेदन में किए गए प्रकथनों के प्रकाश में किसी भी तर्कणा के आधार यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि राज्य ने इस बात का प्रदर्शन करने में अपनी बाध्यता का निर्वहन कर दिया है कि वह समय के भीतर अपील फाइल करने में 'पर्याप्त कारणवश' प्रवारित था । उच्चतम न्यायालय ने अपील फाइल किए जाने में विलंब के प्रश्न पर विचार करते हुए विधिक स्थिति का उल्लेख **ईशा भट्टाचार्जी** बनाम **राय हुनतपुर नफर एकेडमी प्रबंध समिति**[1] वाले मामले में दिए गए अपने निर्णय के पैरा 21 और 22 में किया है, जिसको निर्देश की सुविधा हेतु नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

> "21.1(i) विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को उदार, व्यावहारिक, न्याय के प्रति समर्पित और गैर रुढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए क्योंकि न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती

---

[1] (2013) 12 एस. सी. सी. 649 = 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6158.

कि वे अन्याय को वैधता प्रदान करे बल्कि उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अन्याय को समाप्त करें ।

21.2(ii) पद 'पर्याप्त कारण' को उसकी उचित भावना, दर्शन और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए और इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ये पद आधारी रूप से लचीले हैं और उनको विद्यमान तथ्यात्मक स्थिति के उचित परिप्रेक्ष्य में लागू किया जाना चाहिए ।

21.3(iii) चूंकि सारभूत न्याय अत्यावश्यक और मूलभूत है, अत: तकनीकी विचारणाओं को अनुचित और अनपेक्षित महत्व नहीं दिया जाना चाहिए ।

21.4(iv) जानबूझकर विलंब कारित किए जाने के पक्ष में कोई उपधारणा नहीं की जानी चाहिए और साथ ही मुकदमेबाज या उसके काउंसेल द्वारा की गई घोर उपेक्षा पर विचार अवश्य किया जाना चाहिए ।

21.5(v) विलंब क्षमता किए जाने की ईप्सा करने वाले किसी पक्ष के सद्भावपूर्ण आरोपों की कमी महत्वपूर्ण और सुसंगत तथ्य होती है ।

21.6(vi) इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पक्के सबूत का अवलंब लोक न्याय को प्रभावित न कर सके और लोक रिष्टि कारित न कर सके क्योंकि न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सावधान रहें ताकि अंततोगत्वा इस बात का मूल्यांकन कर सके कि वास्तव में न्याय की विफलता नहीं हुई ।

21.7(vii) उदार दृष्टिकोण की संकल्पना तर्कसंगतता की संकल्पना की पुष्टि करने वाली होनी चाहिए और इसको अनिर्बंधित और स्वतंत्र रूप से कार्यान्वित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

21.8(viii) असाधारण विलंब और लघु अवधि या कुछ दिनों का विलंब के मध्य विभेद होता है क्योंकि पूर्ववर्ती (असाधारण विलंब) के संबंध में प्रतिकूल प्रभाव के सिद्धांत आकर्षित होता है

जबकि पश्चात्वर्ती (लघु अवधि या कुछ दिनों का विलंब) के संबंध में यह सिद्धांत आकर्षित नहीं होता । इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती (असाधारण विलंब) के संबंध में कड़ाईपूर्वक दृष्टिकोण की अपेक्षा होती है जबकि पश्चात्वर्ती (लघु अवधि या कुछ दिनों का विलंब) के संबंध में उदार दृष्टिकोण अपेक्षित होता है ।

21.9(ix) किसी पक्ष द्वारा कार्रवाई न किए जाने या उपेक्षा किए जाने के संबंध में उसके आचरण, व्यवहार और प्रवृत्ति सुसंगत कारक होते हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए । इसी कारणवश मूल सिद्धांत यह है कि न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे दोनों पक्षों के संबंध में न्याय के तराजू का संतुलन बराबर रखें और उपरोक्त सिद्धांत को उदार दृष्टिकोण के नाम पर पूर्णतया अधित्येजित नहीं किया जा सकता ।

21.10(x) यदि प्रस्तुत किया गया स्पष्टीकरण बनावटी है या आवेदन में अभिकथित आधार कृत्रिम है तो न्यायालयों को इस बाबत सावधान होना चाहिए कि दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से ऐसी मुकदमेबाजी का सामना न करना पड़े ।

21.11(xi) इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कोई व्यक्ति परिसीमा की विधि की तकनीकियों का आश्रय लेने के द्वारा कपट, दुर्व्यपदेशन या अंतरवेषण का आश्रय न ले सके ।

21.12(xii) तथ्यों के संपूर्ण समुच्चय की सतर्कतापूर्वक संवीक्षा की जानी चाहिए और न्यायालय का दृष्टिकोण न्यायायिक विवेकाधिकार के प्रतिमान, जिसे सकारात्मक तर्कसंगतता के आधार पर पाया जाता है और न कि व्यक्तिगत संवेदना के आधार पर ।

21.13(xiii) किसी सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य या किसी लोक निकाय या किसी अस्तित्व को कुछ स्वीकार्य स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए ।

22. उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कुछ और अधिक मार्ग-दर्शक सिद्धांतों को

संयोजित कर सकते हैं । वे हैं –

22.1(क) विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन सावधानीपूर्वक प्रारुपित किया जाना चाहिए, न कि अव्यवस्थित तरीके से जिससे कि इस अवधारणा को बल मिल सके कि न्यायालयों से इस सिद्धांत के आधार पर विलंब को क्षमा किया जाना अपेक्षित है कि गुणागुण के आधार पर विवाद का न्यायनिर्णयन किया जाना न्याय वितरण प्रणाली के लिए अत्यावश्यक है ।

22.2(ख) विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन पर वैयक्तिक दर्शन, जो आधारी रूप से विषय परख होता है, के आधार पर नैत्यिक रीति में विचार नहीं किया जाना चाहिए ।

22.3(ग) यद्यपि कोई संक्षिप्त सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता, फिर भी न्यायिक विवेकाधिकार की संकल्पना को ध्यान में रखते हुए न्यायिक प्रणाली की निरंतरता और सहशासन को अभिप्राप्त किए जाने के लिए भानपूर्ण प्रयास इस प्रकार से किया जाना चाहिए, जैसेकि वह प्रयास अंतिम संस्थागत उद्देश्य हो ।

22.4(घ) विलंब को एक गैर-संजीदा मामला समझकर कारित किए जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और इसलिए उसके प्रति उदासीन रीति में जो भावुक झुकाव प्रदर्शित किया जाता है, उस पर अंकुश लगाया जाना चाहिए, निश्चित रूप से विधिक प्राचलों के भीतर।"

6. हम, इस बात के प्रति जागरूक हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष एल.पी.ए. फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ लालफीताशाही के अंतर्वलित होने के कारण अवयैक्तिक अफसरशाही को ध्यान में रखते हुए युक्तिसंगत सीमा के भीतर रहते हुए कुछ मात्रा में उदारता बरती जानी चाहिए, किंतु तत्समय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मुख्य महापोस्ट मास्टर और अन्य** बनाम **लिविंग**

मीडिया इंडिया लि. और एक अन्य[1] वाले मामले में पैरा 12 और 13 में जो कहा गया वह भी समान रूप से उल्लेखनीय है :–

"12. यह विवादित नहीं है कि संबद्ध व्यक्ति(यों) परिसीमा की विहित अवधि को सम्मिलित करते हुए इस न्यायालय के संज्ञान में विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से मामला फाइल किए जाने के द्वारा अंतर्वलित विवाद्यक के प्रति जागरूक थे या उसकी पूर्ण जानकारी थी । वे इस बात का दावा नहीं कर सकते कि उनको परिसीमा की कोई पृथक् अवधि उपलब्ध थी जबकि विभाग में न्यायालय की कार्यवाहियों की जानकारी रखने वाले सक्षम व्यक्ति मौजूद थे । हम किसी संभाव्य और स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में एक प्रश्न करते हैं कि विलंब को मात्र इस कारणवश यांत्रिक रूप से क्यों क्षमा कर दिया जाना चाहिए क्योंकि सरकार या सरकार का कोई खंड हमारे समक्ष उपस्थित मामले में एक पक्ष है । हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि ऐसे मामलों जिनमें घोर उपेक्षा कारित नहीं की गई है या सद्भाव की कमी के कारण जानबूझकर कार्रवाई नहीं की गई है, विलंब क्षमा किए जाने के मामले में सारभूत न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ उदारतापूर्वक कुछ छूट अवश्य प्रदान की जानी चाहिए, हमारा यह विचार है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभाग विभिन्न पूर्ववर्ती विनिश्चयों का लाभ नहीं ले सकता । अवयैक्तिक तंत्र और विरासत में मिली हुई अफसरशाही की कार्य प्रणाली के कारण विभिन्न टिप्पण तैयार किए जाने के आधार पर किया गया दावा आधुनिक तकनीक, जिसका प्रयोग किया जा रहा है और जो उपलब्ध है, को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता । निःसंदेह रूप से परिसीमा की विधि सरकार को सम्मिलित करते हुए सभी लोगों को आपस में जोड़ती है ।

13. हमारे विचार में यह उचित समय है कि समस्त सरकारी निकायों, उनके अभिकरणों और माध्यमों को सूचित कर दिया जाए

---

[1] (2012) 3 एस. सी. सी. 563 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1506.

कि जब तक कि उनके पास विलंब के संबंध में युक्तिसंगत और स्वीकार्य स्पष्टीकरण न हो और उनके द्वारा सद्भावपूर्वक प्रयास किया गया, इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि इस बाबत साधारण स्पष्टीकरणों को स्वीकार किया जाए कि फाइल प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की अनेकानेक स्थितियों के कारण अनेक माह/वर्षों तक लंबित बनी रही । सरकारी विभाग इस बात को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ विशेष बाध्यता के अधीन होते हैं कि वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन सम्यक् तत्परता और वचनबद्धता के साथ करें । विलंब को क्षमा किया जाना एक अपवादिक स्थिति है और इसे सरकारी विभागों के प्रत्याक्षित लाभ के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए । विधि प्रत्येक व्यक्ति को एक ही प्रकाश के अंतर्गत संरक्षण प्रदान करता है और इसका प्रयोग कुछ लोगों के लाभ के लिए नहीं किया जाना चाहिए । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि विभाग द्वारा विलंब के लिए सिवाय विभिन्न तारीखों का उल्लेख किए जाने के अलावा कोई उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया, अतः हमारे अनुसार विभाग इस वृहत्तर विलंब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी स्वीकार्य और तर्कपूर्ण कारण को प्रस्तुत कर पाने में बुरी तरह से विफल रहा है । तद्नुसार, अपीलें विलंब के आधार पर खारिज किए जाने योग्य है ।"

7. इस विधिक स्थिति की पृष्ठभूमि में, जब हम आवेदन में आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किए गए स्पष्टीकरण का परीक्षण कर रहे हैं, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह अभिवाक् कि फाइल विधि विभाग को सम्मिलित करते हुए विभिन्न कार्यालयों में प्रक्रियाधीन बनी रही इत्यादि-इत्यादि 468 दिनों के असामान्य विलंब को स्पष्ट किए जाने के बाबत कोई 'पर्याप्त कारण' नहीं पाते । तद्नुसार, विलंब क्षमा किए जाने के लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन खारिज किया जाता है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

अवि.

रश्मि सिंह (श्रीमती)

बनाम

अरुण कुमार सिंह

(2016 की प्रथम अपील सं. 193)

तारीख़ 5 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह और न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) और (i-ख) – क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराया जाना – पति और पत्नी द्वारा पर्याप्त अवधि से पृथक्-पृथक् रहना – विधिक सहायता समिति द्वारा मध्यक्षेप के प्रयास विफ़ल होना – पत्नी द्वारा पति को लिखे गए पत्रों से यह उपदर्शित होना कि पत्नी ने स्वेच्छा से पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था – पति द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल अर्जी के जवाब में भी पत्नी द्वारा पति के साथ जाने से इनकार किया जाना – पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है ।

अर्जीदार-पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के पक्षकथनानुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों के बीच तारीख 30 मई, 1997 को हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार राम जानकी मंदिर, जमशेदपुर के निकट सोनारी में विवाह सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् पक्षकार अपने वैवाहिक गृह 22/एच 6, फ्लोर मिल रोड, साकची, जमशेदपुर में रहने लगे । उनके विवाह से तारीख 30 नवंबर, 1998 और तारीख 18 मार्च, 2000 को दो पुत्र उत्पन्न हुए । यह अभिकथित किया गया है कि विपक्षी-पत्नी अर्थात् हमारे समक्ष की अपीलार्थी छोटी-छोटी बातों पर अर्जीदार-पति और उसके कुटुंब के सदस्यों से झगड़ा करती थी और वह सदैव ही इस बात पर बल देती थी कि अर्जीदार अपने माता-

पिता का घर छोड़कर सोनारी में उसके माता-पिता के मकान पर रहे । जब अर्जीदार-पति ने विपक्षी-पत्नी की मांग स्वीकार नहीं की तब पत्नी ने तारीख 5 सितंबर, 1999 को अर्जीदार-पति को स्थायी रूप से छोड़ दिया और अपने माता-पिता के मकान पर रहने लगी । दूसरे पुत्र का जन्म परित्यजन की अवधि के दौरान तारीख 18 मार्च, 2000 को टी. एम. अस्पताल में हुआ था । अर्जीदार-पति को अपने दूसरे पुत्र से मिलने नहीं दिया गया । अर्जीदार ने अपनी पत्नी को अपने साथ रखने के लिए और दाम्पत्य जीवन को कायम रखने के लिए हर संभव प्रयास किया, तथापि, अर्जीदार, उसके माता-पिता और दोनों पक्षों के मित्रों द्वारा किए गए सभी प्रयास विफल हो गए । इसके पश्चात् अर्जीदार ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक वाद संस्थित किया जो कि वैवाहिक वाद सं. 56/01 है और अर्जीदार ने सुलह के लिए भी सभी प्रयास किए । तथापि, उक्त मामले में भी विपक्षी-पत्नी ने अर्जीदार के साथ दाम्पत्य जीवन बिताने से इनकार कर दिया । अर्जीदार को यह धमकी भी दी गई थी कि उसे और उसके कुटुंब के सदस्यों को दांडिक मामलों में अन्तर्वलित किया जाएगा और परिणामस्वरूप तारीख 26 अप्रैल, 2001 को आवेदक द्वारा एक इत्तिलाई-रिपोर्ट फाइल की गई थी । तारीख 31 अगस्त, 2001 को पत्नी द्वारा अर्जीदार और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग, क्रूरता और प्रताड़ना के अभिकथन करते हुए एक परिवाद मामला फाइल किया गया था जिसकी सं. 945/01 है । विधिक सहायता समिति, सोनारी, जमशेदपुर के द्वारा मध्यक्षेप करने पर तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन हुआ था । तथापि, पत्नी ने पुन: तारीख 11 जून, 2004 को अर्जीदार का परित्यजन कर दिया और तब से वह पृथक् रह रही है । वस्तुत: पत्नी ने अर्जीदार-पति का तारीख 5 सितंबर, 1999 को परित्यजन किया था और तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन हुआ था और अंतत: पत्नी ने अर्जीदार-पति को तारीख 11 जून, 2004 को पुन: परित्यक्त कर दिया । अर्जीदार अपनी वैवाहिक नातेदारी तथा अपने बच्चों के सानिध्य से वंचित रहा था । अर्जीदार का यह कथन है कि उसके विरुद्ध मिथ्या दांडिक मामला फाइल करके उसके साथ क्रूरता बरती

गई थी और पत्नी ने उसका परित्याग कर दिया था । उसने तारीख 7 मार्च, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद वापस ले लिया था और अंततः वर्तमान मामला उस विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया था जो तारीख 30 मई, 1997 को सम्पन्न हुआ था और क्रूरता और परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया गया था । वर्तमान अपील 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा तारीख 20 सितंबर, 2016 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने यह आदेश पारित किया है – "वाद विरोध किए जाने के बावजूद डिक्री किया जाता है । तारीख 30 मई, 1997 को पक्षकारों के बीच सम्पन्न विवाह एतद्द्वारा अर्जीदार के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करके विघटित किया जाता है ।" प्रत्यर्थी ने इस निर्णय को आक्षेपित करते हुए इसे पूर्णतया अवैध और किसी विधिमान्य साक्ष्य के बिना पारित करना बताया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के बीच मुफ्त विधिक सहायता समिति की सहायता से तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के पश्चात् पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी के बीच 6 मास के अंदर तारीख 11 जून, 2004 तक कोई प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी, अतः हम यह उचित समझते हैं कि यह सुनिश्चित किया जाए कि क्रूरता के विवाद्यक की अपेक्षा परित्यजन का पहलू विद्यमान है । यद्यपि ऐसे मामलों में व्यवहार द्वारा ऐसा परित्यजन किया जा सकता है जिसे सही कहा जा सकता है और इसके प्रतिकूल परित्यजन ऐसी किसी प्रकृति का हो सकता है जो दूसरे दम्पत्ति के साथ गंभीर क्रूरता का परिणाम भी उत्पन्न करता हो । तथापि, वर्तमान मामले में यह उल्लेखनीय है कि तारीख 5 सितंबर, 1999 को पत्नी द्वारा पहली बार पति का साथ छोड़ा गया था तथापि, इससे पूर्व परित्यजन के लिए ऐसा कोई वृहत्त कारण नहीं बन सकता । यद्यपि दहेज की मांग के अभिकथन किए गए हैं और साथ ही साथ क्रूरता और तंग करने के अभिकथन भी किए गए हैं तथापि, ये अभिकथन साबित किया जाना

प्रतीत नहीं होते हैं । तत्पश्चात् पति और पत्नी पृथक्-पृथक् रहने लगे थे और इस बीच में पत्नी ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं के अधीन क्रूरता के अभिकथन करते हुए 2001 का परिवाद मामला सं. 945 फाइल किया था और इसके पश्चात् पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया था । इसके पश्चात् मुफ्त विधिक सहायता समिति की सहायता से मामला सुलझा दिया गया था और अंततः पत्नी ने तारीख 11 जून, 2004 को पुनः परित्यजन कर दिया था । प्रत्यर्थी-पति ने विवाह-विच्छेद के लिए यह वैवाहिक वाद वर्ष 2008 में फाइल किया था और इसके पश्चात् वाद फाइल किए जाने तक इस बीच में पहले ही पर्याप्त अवधि बीत चुकी थी । इसके पश्चात् पत्नी ने अपने पति के साथ रहने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया और इसके प्रतिकूल उसने स्वयं भी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए कोई वाद फाइल नहीं किया । इसके बजाय उसने पति के विरुद्ध परिवाद मामला सं. 945 फाइल करके उसका अभियोजन किया । प्रत्यर्थी-पति के लिए यह अत्यंत अव्यावहारिक और कठिन होगा कि वह उस स्थिति में अपनी पत्नी को अपने साथ लाने में सफल हो जब पत्नी स्वयं ही उसके साथ रहने के लिए हितबद्ध नहीं है और इसके साथ ही साथ वह इस बात के लिए भी रजामंद नहीं है कि वह अपने पति के विरुद्ध दांडिक आरोपों को वापस ले । (ii) वर्तमान मामले में साक्ष्य प्रदर्श-ए जो पत्नी द्वारा उद्धृत किया गया है और प्रदर्श-6 जो उसके पति द्वारा उद्धृत किया गया है, से यह प्रकट होता है और पत्नी के इस आशय की ओर संकेत मिलता है कि वह अपने वैवाहिक जीवन को स्थायी रूप से समाप्त करना चाहती है । इस प्रदर्श पर, जो तारीख 11 जून, 2004 का पत्र है, हमारे समक्ष की अपीलार्थी-पत्नी के हस्ताक्षर अंकित हैं जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि वह अपनी मर्जी से अपने पति का घर अर्थात् अपनी ससुराल छोड़कर अपने मायके जा रही है और इसका कारण यह है कि उसके द्वारा किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद वह अपनी ससुराल में रहने के काबिल नहीं है और इस प्रकार वह अपने दो भाइयों के साथ में रह रही है और उसने इस संबंध में पुलिस को भी सूचित कर दिया है ।

समर्पण के इस आशय के साथ-साथ किसी नए आधार के बिना तारीख 11 जून, 2004 को परित्यजन का उसका भौतिक कार्य जो 12 दिसंबर, 2003 को ससुराल पुनः जाने के लिए उपदर्शित किया गया है, परित्यजन के संघटकों को पूरा करता है । (iii) हमें यह प्रतीत होता है कि पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अपना वाद फाइल करके अपनी पत्नी और बच्चों को वापस लाने के लिए युक्तियुक्त प्रयास किए थे जिससे कि वह शांतिपूर्वक अपने वैवाहिक जीवन को गुज़ार सके । तथापि, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के अनुसार उसने खुले न्यायालय में यह कहा था कि वह अपनी ससुराल जाने के लिए और अपने पति के साथ रहने के लिए तैयार नहीं है और उसने अपनी विदाई की तारीख से भी इनकार करते हुए अनुरोध खारिज कर दिया था और इसलिए उसके साक्ष्य के अनुसार भी यह प्रतीत होता है कि मामले की पृष्ठभूमि में पत्नी पूर्व में भी अपने पति के साथ वापस जाने के लिए और उसका साथ निभाने के लिए तैयार नहीं थी । इसके पश्चात् छह मास की अल्प अवधि के पश्चात् जब वे साथ-साथ रह रहे थे, तब उसने एकपक्षीय रूप से किसी सबूत या न्यायोचित्य के बिना तारीख 11 जून, 2004 को अपने पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था । उसने स्पष्ट रूप से कभी भी अपने पति के साथ रहने के लिए या वापस जाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया । अब वर्ष 2018 चल रहा है और इस प्रकार वर्ष 2004 से लगभग 14 साल बीत चुके हैं । पति ने वर्ष 2004 में अर्थात् वर्ष 2004 से चार वर्ष की अवधि तक उसके वापस आने की प्रतीक्षा करने के पश्चात् विवाह-विच्छेद के लिए वैवाहिक वाद फाइल किया है । अतः पत्नी की ओर से परित्यजन का दोष पूर्ण रूप से बनता है और पति अर्थात् हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के अनुतोष के लिए उचित रूप से हकदार है । (iv) जहां तक भरणपोषण का संबंध है, हम अपने समक्ष के अपीलार्थी के ऊपर छोड़ते हैं कि यदि वह चाहे तो समुचित न्यायालय के समक्ष इस बारे में कार्यवाही (समावेदन) कर सकती है । उपर्युक्त संप्रेक्षण और विवेचना को

दृष्टिगत करते हुए 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में जमशेदपुर स्थित विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम द्वारा तारीख 29 सितंबर, 2016 को पारित निर्णय जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने यह आदेश पारित किया है कि "पक्षकारों के बीच तारीख 30 मई, 1997 को सम्पन्न विवाह एतद्द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है" की पुष्टि की जाती है । (पैरा 23 और 24)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की प्रथम अपील सं. 193.

2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा तारीख 20 सितंबर, 2016 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री पी. के. मुखोपाध्याय, तेजो मिस्त्री और महादेव ठाकुर

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पी. एस. दयाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा ने दिया ।

न्या. भेंगड़ा – पक्षकारों को सुना गया ।

2. वर्तमान अपील 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा तारीख 20 सितंबर, 2016 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने यह आदेश पारित किया है – "वाद विरोध किए जाने के बावजूद डिक्री किया जाता है । तारीख 30 मई, 1997 को पक्षकारों के बीच सम्पन्न विवाह एतद्द्वारा अर्जीदार के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करके विघटित किया जाता है ।" प्रत्यर्थी ने इस निर्णय को आक्षेपित करते हुए इसे पूर्णतया अवैध और किसी विधिमान्य साक्ष्य के बिना पारित करना बताया है ।

3. अर्जीदार-पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के पक्षकथनानुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षकारों के बीच तारीख 30

मई, 1997 को हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार राम जानकी मंदिर, जमशेदपुर के निकट सोनारी में विवाह सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् पक्षकार अपने वैवाहिक गृह 22/एच 6, फ्लोर मिल रोड, साकची, जमशेदपुर में रहने लगे । उनके विवाह से तारीख 30 नवंबर, 1998 और तारीख 18 मार्च, 2000 को दो पुत्र उत्पन्न हुए । यह अभिकथित किया गया है कि विपक्षी-पत्नी अर्थात् हमारे समक्ष की अपीलार्थी छोटी-छोटी बातों पर अर्जीदार-पति और उसके कुटुंब के सदस्यों से झगड़ा करती थी और वह सदैव ही इस बात पर बल देती थी कि अर्जीदार अपने माता-पिता का घर छोड़कर सोनारी में उसके माता-पिता के मकान पर रहे । जब अर्जीदार-पति ने विपक्षी-पत्नी की मांग स्वीकार नहीं की तब पत्नी ने तारीख 5 सितंबर, 1999 को अर्जीदार-पति को स्थायी रूप से छोड़ दिया और अपने माता-पिता के मकान पर रहने लगी । दूसरे पुत्र का जन्म परित्यजन की अवधि के दौरान तारीख 18 मार्च, 2000 को टी. एम. अस्पताल में हुआ था । अर्जीदार-पति को अपने दूसरे पुत्र से मिलने नहीं दिया गया । अर्जीदार ने अपनी पत्नी को अपने साथ रखने के लिए और दाम्पत्य जीवन को कायम रखने के लिए हर संभव प्रयास किया, तथापि, अर्जीदार, उसके माता-पिता और दोनों पक्षों के मित्रों द्‌वारा किए गए सभी प्रयास विफल हो गए । इसके पश्चात् अर्जीदार ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक वाद संस्थित किया जो कि वैवाहिक वाद सं. 56/01 है और अर्जीदार ने सुलह के लिए भी सभी प्रयास किए । तथापि, उक्त मामले में भी विपक्षी-पत्नी ने अर्जीदार के साथ दाम्पत्य जीवन बिताने से इनकार कर दिया । अर्जीदार को यह धमकी भी दी गई थी कि उसे और उसके कुटुंब के सदस्यों को दांडिक मामलों में अन्तर्वलित किया जाएगा और परिणामस्वरूप तारीख 26 अप्रैल, 2001 को आवेदक द्‌वारा एक इत्तिलाई-रिपोर्ट फाइल की गई थी । तारीख 31 अगस्त, 2001 को पत्नी द्‌वारा अर्जीदार और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग, क्रूरता और प्रताड़ना के अभिकथन करते हुए एक परिवाद मामला फाइल किया गया था जिसकी सं. 945/01 है । विधिक सहायता समिति,

सोनारी, जमशेदपुर के द्‌वारा मध्यक्षेप करने पर तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन हुआ था । तथापि, पत्नी ने पुन: तारीख 11 जून, 2004 को अर्जीदार का परित्यजन कर दिया और तब से वह पृथक् रह रही है । वस्तुत: पत्नी ने अर्जीदार-पति का तारीख 5 सितंबर, 1999 को परित्यजन किया था और तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन हुआ था और अंतत: पत्नी ने अर्जीदार-पति को तारीख 11 जून, 2004 को पुन: परित्यक्त कर दिया । अर्जीदार अपनी वैवाहिक नातेदारी तथा अपने बच्चों के सानिध्य से वंचित रहा था । अर्जीदार का यह कथन है कि उसके विरुद्ध मिथ्या दांडिक मामला फाइल करके उसके साथ क्रूरता बरती गई थी और पत्नी ने उसका परित्याग कर दिया था । उसने तारीख 7 मार्च, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद वापस ले लिया था और अंतत: वर्तमान मामला उस विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया था जो तारीख 30 मई, 1997 को सम्पन्न हुआ था और क्रूरता और परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए अनुरोध किया गया था ।

4. विपक्षी-रश्मि सिंह अर्थात् हमारे समक्ष की अपीलार्थी-पत्नी ने उपस्थित होकर अर्जीदार के दावे का विरोध किया था और विस्तृत लिखित कथन फाइल किया था । उसने विवाह के तथ्य और उनके विवाह बंधन से दो बच्चों के जन्म संबंधी कथन को स्वीकार किया था । उसने यह कथन किया कि अर्जीदार-पति के पास कोई वाद-हेतुक नहीं है क्योंकि उसने अर्जीदार के साथ कोई क्रूरता नहीं बरती है और न ही उसने अर्जीदार का परित्यजन किया है और वह अभी भी अर्जीदार के साथ रहने के लिए तैयार और रजामंद है । अर्जीदार ने ही उसके साथ क्रूरता के कार्य किए थे और उसे उसकी ससुराल से बलपूर्वक निकाल दिया था । उसने अर्जीदार द्‌वारा किए गए क्रूरता के अभिकथन से इनकार करते हुए यह कहा कि अर्जीदार ने उसके प्रथम बच्चे के जन्म के समय बच्चे के जन्म के खर्चों को पूरा करने के लिए उसके माता-पिता से दहेज के रूप में 3,00,000/- रुपए की मांग की थी । इसके

पश्चात् उसे तारीख 5 सितंबर, 1999 को उसके दूसरे गर्भ के आरंभ में ही उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था और वह अपने माता-पिता के मकान में आश्रय लेने के लिए मजबूर हुई थी । उसने अपनी ससुराल नहीं छोड़ी थी अपितु उसे अत्यधिक कठिनाईपूर्ण स्थिति में उसकी ससुराल छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था । उसने यह बात दोहराई थी कि वह अपनी ससुराल में अर्जीदार के साथ रहने के लिए तैयार है और उसके साथ दाम्पत्य जीवन बिताना चाहती है तथापि, अर्जीदार ने ही प्रत्येक अवसर पर दाम्पत्य जीवन साथ में बिताने के लिए मंजूरी नहीं दी । उसे इस बारे में कोई जानकारी नहीं है कि अर्जीदार द्वारा कोई इत्तिलाई-रिपोर्ट फाइल की गई थी । 2001 का परिवाद मामला सं. 945 सही तथ्यों के आधार पर फाइल किया गया था क्योंकि उसके साथ बरती गई क्रूरता को उसके लिए सहना मुश्किल हो गया था । उसने यह भी कहा है कि विधिक सहायता समिति ने उसकी खतरनाक स्थिति पाते हुए उसे तारीख 11 जून, 2004 को उसके माता-पिता के मकान पर वापस भेज दिया था ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर वाद के न्यायनिर्णयन के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

(i) क्या यथा प्रारूपित वाद ग्रहण किए जाने योग्य है ?

(ii) क्या अर्जीदार के पास विधिमान्य वाद हेतुक है ?

(iii) क्या विपक्षी ने अर्जीदार के साथ क्रूरता बरती है ?

(iv) क्या विरोधी पक्षकार ने इस अर्जी को पेश किए जाने के ठीक पूर्व दो वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए अर्जीदार का परित्यजन कर दिया है ?

(v) अर्जीदार क्या अनुतोष पाने का हकदार है ?

6. अर्जीदार-पति की ओर से अपने पक्षकथन के समर्थन में कुल 4 साक्षियों की परीक्षा कराई गई है । ये साक्षी स्वयं अर्जीदार-पति अरुण कुमार सिंह है । ए. डब्ल्यू. 2 विनोद कुमार सिंह अर्जीदार का भाई है

और तीसरा तथा चौथा साक्षी विजेन्द्र सिंह और कैलाश पति सिंह क्रमश: दोनों पक्षकारों के जानकार हैं । अर्जीदार-पति ने कतिपय दस्तावेजों को भी प्रदर्श किया है । प्रदर्श-1, 2001 के वैवाहिक वाद सं. 56 में तारीख 12 अप्रैल, 2001 और तारीख 17 अप्रैल, 2001 को पारित आदेशों की प्रमाणित प्रतियां हैं जो दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किए गए वाद से संबंधित हैं । प्रदर्श-2, 2001 के वैवाहिक वाद सं. 56 में पारित आदेश है जिससे यह उपदर्शित होता है कि विपक्षी पत्नी अपनी ससुराल जाने के लिए तैयार नहीं थी । प्रदर्श-3, 2001 के इत्तिलाई आवेदन सं. 20 में तारीख 26 अप्रैल, 2001 को पारित आदेश की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श-4 प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल किए गए 2001 के सी/1 मामला सं. 945 की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श-5, 2001 के सी/1 मामला सं. 945 में तारीख 21 अप्रैल, 2003 को पारित आदेश की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श-6 एक पत्र है जिस पर प्रत्यर्थी-पत्नी के हस्ताक्षर अंकित हैं और जिससे यह उपदर्शित होता है कि उसने स्वेच्छा से अपनी ससुराल छोड़ी थी और प्रदर्श-7, 2001 के वैवाहिक मामला सं. 56 में तारीख 7 मार्च, 2003 को पारित आदेश की प्रमाणित प्रति है जिससे यह उपदर्शित होता है कि अर्जीदार-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किए गए वाद को वापस लिया था ।

7. अर्जीदार अरूण कुमार सिंह ने वादपत्र में किए गए संपूर्ण तात्विक प्रकथनों का पूर्ण रूप से समर्थन किया है । उसने यह कथन किया है कि विरोधी पक्षकार अपनी ससुराल में रहने के दौरान सदैव ही उसके साथ और उसके कुटुंब के सदस्यों के साथ झगड़ा करती थी । वह सदैव ही प्रत्यर्थी-पति पर अपने कुटुंब के सदस्यों को छोड़कर विपक्षी के साथ पृथक् रहने के लिए दबाव डालती थी । जब अर्जीदार ने इस दबाव को स्वीकार नहीं किया तब अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 5 सितंबर, 1999 को उसका परित्यजन कर दिया और अपने माता-पिता के साथ रहने लगी । विपक्षी द्वारा धमकी दिए जाने पर अर्जीदार-पति ने विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जमशेदपुर के समक्ष 2001 का इत्तिलाई आवेदन सं. 20 फाइल किया था । यह भी कहा गया है कि उसके और

उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग का मिथ्या मामला और क्रूरता का कथन करते हुए 2001 का सी/1 मामला सं. 945 संस्थित किया गया था । तारीख 12 दिसंबर, 2003 को मुफ्त विधिक सहायता समिति, सोनारी, जमशेदपुर और कुटुंब के अन्य सदस्यों के मध्यक्षेप से सुलह कराई गई थी और विपक्षी तारीख 12 दिसंबर, 2003 को प्रत्यर्थी के मकान पर आ गई थी तथापि, वह किसी युक्तियुक्त कारण के बिना तारीख 11 जून, 2004 को पुन: अपने माता-पिता के मकान पर वापस चली गई और तब से पक्षकार पुन: पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और विपक्षी ने अर्जीदार को छोड़ दिया है । यह भी कहा गया था कि उसके पिता की तारीख 24 अक्तूबर, 2004 को मृत्यु हो गई थी तथापि, इत्तिला दिए जाने और जानकारी के बावजूद न तो उसकी पत्नी और न ही उसके माता-पिता अंतिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए आए थे । विपक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि 2009 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 1054 में तारीख 1 अप्रैल, 2010 के इस न्यायालय के आदेश द्वारा सुलह कराने का प्रयास किया गया था तथापि, उसने अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए माननीय उच्च न्यायालय द्वारा किए गए आदेश का अनुपालन नहीं किया । तारीख 11 सितंबर, 2009 को भी सुलह कराने के लिए बातचीत की गई थी तथापि, प्रत्यर्थी ने अपनी पत्नी को साथ रखने से इनकार कर दिया ।

8. ए. डब्ल्यू. 2 विनोद कुमार सिंह अर्जीदार-पति का भाई है । उसने यह कथन किया है कि विपक्षी पत्नी अपने वैवाहिक जीवन को बनाए रखना नहीं चाहती थी और उसने तारीख 5 सितंबर, 1999 अर्जीदार-पति का परित्यजन कर दिया था और तब से वह अपने माता-पिता के साथ रह रही है । सोनारी पुलिस थाने और विधिक सहायता समिति द्वारा किए गए प्रयासों पर वह तारीख 12 दिसंबर, 2003 को अपने पति के पास वापस आई थी तथापि, उसने जून, 2004 पुन: अपने पति का परित्यजन कर दिया और तब से पक्षकार पृथक्-पृथक् रह रहे हैं । उसने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दांडिक मामले को संस्थित किए जाने के बारे में भी कथन करते हुए यह बताया है कि उसका भाई तारीख 11

जून, 2004 से अपने वैवाहिक जीवन के आनन्द से वंचित है । वह वर्ष 2000 में दो-तीन बार विपक्षी के मकान पर गया था तथापि, सुलह का प्रयास विफल हो गया था । उसने यह भी कथन किया है कि उसके भाई ने वर्ष 2001 से 2010 तक अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया है । विरोधी पक्षकार विधिक सहायता समिति के प्रयास पर समझौते के निबंधनों में वापस आई थी, तथापि, उसने वर्ष 2004 में पुन: अपने पति का परित्यजन कर दिया ।

9. अर्जीदार-पति का तीसरा साक्षी ए. डब्ल्यू. 3 विजेन्द्र सिंह है जो दोनों पक्षकारों को जानता है । उसने यह कथन किया है कि दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी । उसने यह भी कथन किया है कि विपक्षी-पत्नी ने स्वयं ही तारीख 5 सितंबर, 1999 से अर्जीदार-पति का साथ छोड़ दिया था । अर्जीदार ने अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए सभी प्रयास किए, तथापि, उसने यह कहकर इनकार कर दिया जब तक अर्जीदार उसके मायके में घर-जमाई के रूप में नहीं रहता है, वह साथ नहीं रहेगी । उसने यह भी कहा है कि अर्जीदार-पति को टी. एम. अस्पताल में उत्पन्न हुए अपने दूसरे पुत्र से मिलने नहीं दिया गया था । अर्जीदार-पति एक सम्मानीय कुटुंब का सदस्य है और उसने अपने वैवाहिक जीवन को बचाने के लिए अपनी ओर से सभी प्रयास किए हैं । विपक्षी ने स्वयं ही यह कहते हुए तारीख 11 जून, 2004 से अपने पति का साथ छोड़ दिया है कि वह अपने पति अर्थात् अर्जीदार के साथ रहने में असमर्थ है ।

10. अर्जीदार-पति का अंतिम और चौथा साक्षी कैलाश पति सिंह है । उसने यह कथन किया है कि विपक्षी ने अर्जीदार अरूण कुमार सिंह को तारीख 5 सितंबर, 1999 से परित्यक्त कर दिया है और वह तारीख 12 दिसंबर, 2003 को वापस आई थी और उसने तारीख 11 जून, 2004 को पुन: अर्जीदार का साथ छोड़कर उसका परित्यजन कर दिया है । उसने यह कथन किया है कि अर्जीदार-पति 2001 के सी/1 मामला सं. 945 में जो विपक्षी-पत्नी द्‌वारा फाइल किया गया था, चार दिनों से न्यायिक अभिरक्षा में है । अर्जीदार के पिता की तारीख 24 अक्तूबर,

2000 को मृत्यु हो गई थी और इत्तिला दिए जाने के बावजूद न तो विपक्षी और न ही उसके कुटुंब के सदस्य अंतिम रीतियों में सम्मिलित हुए । साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह कहा है कि वह अर्जीदार-पति को पिछले 20 वर्षों से जानता है और अक्सर उसके मकान पर आता-जाता है । उसने यह कथन किया है कि वह अर्जीदार के पिता के श्राद्ध के समय नवंबर, 2000 में अर्जीदार के गांव गया था । उसने यह भी कथन किया है कि पुलिस थाना सोनारी तथा विधिक सहायता समिति के समक्ष वर्ष 2003 में समझौता हुआ था और विपक्षी-पत्नी अपनी ससुराल वापस आ गई थी ।

11. विपक्षी की ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई गई है । प्रथम साक्षी धीरेन्द्र कुमार सिंह विपक्षी-पत्नी का भाई है और द्वितीय साक्षी रश्मि सिंह स्वयं विपक्षी-पत्नी है । विपक्षी ने भी दस्तावेज प्रदर्शित किए हैं । प्रदर्श-ए तारीख 11 जून, 2004 के पत्र की फोटो प्रति है जिस पर विपक्षी ने यह उल्लेख करते हुए हस्ताक्षर किए हैं कि वह अपनी स्वेच्छा से अपनी ससुराल छोड़ रही है, प्रदर्श-बी तारीख 1 अप्रैल, 2010 का आदेश है जो 2009 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 1054 में पारित किया गया है, प्रदर्श-सी तारीख 14 जुलाई, 2010 का आदेश है जो 2009 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 1054 में पारित किया गया है, प्रदर्श-डी तारीख 11 मार्च, 2009 को मध्यक्षेप केन्द्र द्वारा किए गए आदेश की प्रमाणित प्रति है जो 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में पारित किया गया है ।

12. धीरेन्द्र कुमार सिंह ने जो विपक्षी-पत्नी का भाई है, यह कथन किया है कि अर्जीदार और विपक्षी का विवाह तारीख 30 मई, 1997 को सम्पन्न हुआ था और उनकी वैवाहिक नातेदारी से तारीख 30 नवंबर, 1998 और तारीख 18 मार्च, 2000 को क्रमश: दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । उसने यह कथन किया है कि उसकी बहन के साथ दहेज की मांग पूरी न करने के कारण शारीरिक और मानसिक क्रूरता बरती गई थी । उसकी उपस्थिति में भी दहेज की मांग की गई थी । अर्जीदार-पति के कुटुंब के सभी सदस्य विपक्षी के साथ क्रूरता बरतने में अर्जीदार का समर्थन करते हुए साथ देते थे । अर्जीदार ने विपक्षी पर दहेज के रूप में 3,00,000/-

रुपए देने के लिए दबाव दिया था । उसने यह भी कथन किया है कि अर्जीदार ने विपक्षी से विवाह-विच्छेद कराने के अपने प्रयास में प्रथमतः दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक वाद संस्थित किया था जो बाद में वापस ले लिया गया था और तत्पश्चात् विवाह-विच्छेद के लिए वर्तमान वाद फाइल किया गया था । अर्जीदार विपक्षी विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहता था । उसने यह कथन किया है कि जब मुफ्त विधिक सहायता समिति के समक्ष सुलह होने के पश्चात् विपक्षी ने तारीख 12 दिसंबर, 2003 से अपने पति के साथ रहना आरंभ कर दिया तब उसके साथ पुनः क्रूरता बरती गई थी और तारीख 11 जून, 2004 को उसकी बहन को वापस जाने के लिए मजबूर कर दिया गया था । उसने प्रकीर्ण मामला सं. 123/2007 द्वारा भरणपोषण के लिए मामला संस्थित करने के संबंध में भी कथन किया है जिसमें भरणपोषण के रूप में 6,000/- रुपए प्रति मास संदाय करने का आदेश पारित किया गया था और जिसे माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया गया था और वहां भी सुलह कराने के प्रयास किए गए थे तथापि, अर्जीदार/आवेदक ने अपनी पत्नी को साथ रखने से इनकार कर दिया था । अंत में उसने यह कहा है कि अर्जीदार या उसका भाई या कुटुंब के अन्य सदस्य उसकी बहन को विदा कराने के लिए कभी नहीं आए । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि विपक्षी वर्तमान में अपने गांव में अपने माता-पिता के साथ रह रही है । 2001 का वैवाहिक वाद सं. 56 षड्यंत्र के साथ उसकी हत्या करने के लिए फाइल किया गया था ।

13. अगली साक्षी स्वयं प्रत्यर्थी रश्मि सिंह है । उसने अपनी मुख्य परीक्षा में जो कि शपथ-पत्र है, अपने लिखित कथन में किए गए पक्षकथन का समर्थन किया है । उसने यह कथन किया है कि उनके विवाह-बंधन से दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं । उसने यह कथन किया है कि दहेज के रूप में 3,00,000/- रुपए की मांग की गई थी और दहेज की मांग पूरी न किए जाने पर उसके साथ क्रूरता बरती गई थी । उसने यह भी कथन किया है कि दूसरे बच्चे के जन्म के पूर्व उसे उसकी ससुराल

से निकाल दिया गया था । 2001 का वैवाहिक वाद सं. 56 उसे बच्चों सहित उसकी ससुराल में वापस लाने के लिए फाइल किया गया था । तथापि, चूंकि इसमें षड्यंत्र था और इसलिए वह अपने पति के साथ अपनी ससुराल नहीं गई । उसने यह भी कथन किया है कि मुफ्त विधिक सहायता समिति द्वारा सुलह कराने पर वह अपनी ससुराल चली गई थी । तथापि, उसे पुन: 6 मास के भीतर उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि वह स्नातक है और उसका विवाह उसके माता-पिता द्वारा कराया गया था । दोनों बच्चे टी. एम. अस्पताल में पैदा हुए थे और अस्पताल के खर्चे उसके माता-पिता द्वारा उठाए गए थे । उसने यह कथन किया है कि दहेज के रूप में 1,55,000/- रुपए दिए गए थे । उसने यह भी कथन किया है कि प्रथम बच्चे की पैदायश के समय 3,00,000/- रुपए की मांग की गई थी और उसके द्वारा इनकार किए जाने पर उसे उसके माता-पिता के घर भेज दिया गया था । उसने यह कथन किया है कि फरवरी, 1999 में वह प्रथम बच्चे के साथ अपनी ससुराल आई थी किंतु 3,00,000/- रुपए की मांग के लिए उसके साथ पुन: क्रूरता बरती गई थी । वह 2001 के वैवाहिक वाद सं. 56 में उपस्थित हुई थी तथापि, वह अपने जीवन को खतरा होने के कारण साथ जाने के लिए सहमत नहीं हुई थी ।

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलीलें

14. अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल श्री पी. के. मुखोपाध्याय ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय में अर्जीदार-पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के एकमात्र साक्ष्य पर विचार किया गया था और पत्नी अर्थात् हमारे समक्ष की अपीलार्थी के साक्ष्य पर किसी भी प्रकार से विचार नहीं किया गया । अपीलार्थी-पत्नी की ओर से न तो क्रूरता बरती गई थी और न ही परित्यजन किया गया था और इसके बजाय प्रत्यर्थी-पति की क्रूरता के कारण अपीलार्थी अपनी ससुराल को छोड़ने के लिए मजबूर हुई थी । अत: पति को स्वयं अपने कार्यों का फायदा नहीं दिया जाना चाहिए । अपीलार्थी के काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी के माता-पिता से दहेज के रूप में 3,00,000/- लाख रुपए की मांग की

गई थी और इसके कारण उस पर अत्यधिक मानसिक दबाव डाला गया था और उसे परेशान किया गया था । जब 3,00,000/- रुपए की मांग को पूरा नहीं किया गया तो उसे तारीख 5 सितंबर, 1999 को उसकी ससुराल से निकाल दिया गया और वह भी उसके गर्भवती होने के आरंभिक प्रक्रम पर । उसके प्रसव के लिए इतना दबाव डालकर इतनी अधिक धनराशि की मांग का यह कार्य किसी भी प्रकार से नहीं किया जाना चाहिए था और इसलिए उसके गर्भ के आरंभिक प्रक्रम पर ही उसे उसकी ससुराल छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया गया था और इस प्रकार अपीलार्थी-पत्नी के साथ क्रूरता बरती गई थी । पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने उस समय अपनी पत्नी के स्वास्थ्य के संबंध में इत्तिला मिलने पर भी कोई परवाह नहीं की जब दूसरा बच्चा उसके गर्भ में था और बच्चे की पैदाइश के समय उसके स्वास्थ्य के संबंध में भी कोई परवाह नहीं की गई ।

15. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष क्रूरता के पहलू के संबंध में विवाद्यक नहीं उठाया गया था अपितु 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 से पहले भी यह मुद्दा नहीं उठाया गया था और अपीलार्थी-पत्नी ने पहले ही 2001 का परिवाद मामला सं. 945 क्रूरता के आधार पर फाइल कर दिया था जिसमें उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 406, 323, 506, 109/34 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के बारे में अभिकथन किए थे । अत: ऐसा कुछ नहीं है कि अपीलार्थी-पत्नी की ओर से क्रूरता का तथ्य गढ़ा हुआ या मिथ्या बनाया हुआ था अपितु ऐसा हुआ था और इसलिए अंतत: उसे उसके पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी का मकान छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था । अत: पति के हक में विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करना उसे क्रूरता के स्वयं अपने ऐसे कार्यों का फायदा देने के समान होगा जिन कार्यों द्वारा उसे उसकी ससुराल छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था और इस प्रकार उसके ससुराल छोड़ने को परित्यजन के रूप में नहीं माना जा सकता ।

16. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विद्वान् निचला न्यायालय अपीलार्थी-पत्नी के भाई अर्थात् धीरेन्द्र कुमार सिंह के साक्ष्य को विचार लेने में विफल रहा है । उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि उसकी उपस्थिति में दहेज की मांग की गई थी । वह शारीरिक और मानसिक क्रूरता के बारे में जानता था जो दहेज की मांगों को पूरा न किए जाने के कारण उसकी बहन के साथ की गई थी । सतत् रूप से परेशान किए जाने और क्रूरता बरते जाने के कारण वह अपनी बहन को उसकी ससुराल से वापस लाने के लिए मजबूर हुआ था और इसका यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि अपीलार्थी ने स्वयं अपनी इच्छा से अपनी ससुराल छोड़ दी थी अपितु उसके साथ उसकी ससुराल में इतना प्रताड़ित और परेशान किया गया था कि उसके पास अपने पति का मकान छोड़ने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचा था । उसके भाई के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी के पति द्वारा फाइल किया गया दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का वाद केवल अपना बचाव करने के लिए और पेशबंदी में फाइल किया गया था और ऐसा पत्नी के विरुद्ध विवाह-विच्छेद का अंतिम मामला फाइल करने के लिए आधार गठित करने के लिए किया गया था । पति अर्थात् हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी इस बात से पूर्णतया अवगत था कि क्रूरता बरतने और परेशान करने के कारण जो कि उसने अपनी पत्नी के साथ किया था, उसे उसकी ससुराल वापस लाने के लिए और प्रत्यर्थी के दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए असमर्थ बनाने के लिए पर्याप्त होगा और इसलिए इसे विवाह-विच्छेद का वाद फाइल करने के लिए बेहतर आधार मिल पाएंगे । अत: काउंसेल ने यह दोहराया है कि निचले न्यायालय के समक्ष पेश किए गए अपीलार्थी के भाई के साक्ष्य पर कुटुंब न्यायालय द्वारा पर्याप्तत: विचार नहीं किया गया था ।

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि दम्पत्ति के अप्राप्तवय पुत्रों अर्थात् अमोद कुमार सिंह आयु 12 वर्ष और अजीत कुमार सिंह आयु 13 वर्ष के साक्ष्यों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि उनकी माता परेशान किए जाने के कारण अपनी ससुराल

छोड़ने के लिए मजबूर हुई थी और तथ्यत: पत्नी अर्थात् हमारे समक्ष की अपीलार्थी पर पति द्वारा हमला किया गया था । काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पुत्रों के इस साक्ष्य पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया । अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा यह भी दोहराया गया है कि दम्पत्ति के पुत्रों के साक्ष्यों अथवा अभिसाक्ष्यों से पत्नी द्वारा तथाकथित परित्यजन के लिए कारण और मजबूरी साबित होती है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी-पत्नी ने मुफ्त विधिक सहायता समिति द्वारा किए गए मध्यक्षेप द्वारा सुलह करने के भी प्रयास किए थे और वह सदैव ही अपने पति के साथ रहने के लिए रजामन्द थी और वह अब भी अपने पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के साथ दाम्पत्य अधिकारों के पूर्ण रूप से प्रत्यास्थापन के लिए रजामन्द है, इस तथ्य के बावजूद कि वह अपने पति के पूर्वतर व्यवहार के कारण अत्यधिक भयभीत है ।

प्रत्यर्थी द्वारा दी गई दलीलें

18. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री पी. एस. दयाल ने अपीलार्थी की दलीलों का जवाब देते हुए यह निवेदन किया है कि पत्नी अर्थात् अपीलार्थी ने अपने पति के साथ रहने के लिए किसी भी रीति में रजामन्दी या उत्सुकता उपदर्शित नहीं की है । इसके प्रतिकूल उसने आरंभ से ही अपने पति के साथ क्रूरता बरत कर पति का साथ छोड़ दिया है और उसने अपने पति को छोड़ कर ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी हैं जो स्वयं उसके प्रतिकूल हैं और इसलिए उसे स्वयं अपने कार्यों का फायदा नहीं दिया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि जहां तक दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का संबंध है, 2001 का वैवाहिक वाद सं. 56 जो पति द्वारा फाइल किया गया था, विवाह-विच्छेद के लिए आधारों के प्रतिकूल नहीं जाता जैसा कि हमारे समक्ष के अपीलार्थी द्वारा अभिकथित किया गया है । 2001 के वैवाहिक मामला सं. 1 में तारीख 25 नवंबर, 2002 को पारित आदेश से यह स्पष्ट होता है कि उसने न्यायालय में खुले तौर पर यह कहा था कि वह अपनी ससुराल जाने के लिए तैयार नहीं है और अपने पति के साथ रहने के

लिए भी तैयार नहीं है । इस आदेश के अनुसार पति ने अपनी पत्नी की विदाई के लिए एक तारीख देने के लिए आवेदन फाइल किया था जिस पर उसकी पत्नी ने यह अनुरोध किया कि यह आवेदन खारिज कर दिया जाए । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने तत्पश्चात् यह दलील दी है कि विद्वान् प्रधान न्यायाधीश द्वारा 2001 के वैवाहिक वाद सं. 56 में तारीख 7 मार्च, 2003 को एक आदेश पारित किया गया था जिसमें उसने पत्नी के रूख का उल्लेख किया था और इस संबंध में भी उल्लेख किया था कि पति को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद वापस लेने के लिए इजाजत दी गई थी और तद्नुसार उसके पश्चात् मामला खारिज किया गया था । इसके परिणामस्वरूप पति ने बाद के प्रक्रम पर विवाह-विच्छेद के लिए वाद फाइल किया था ।

19. इसके पश्चात् विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि पति मुफ्त विधिक सहायता समिति द्वारा किए गए प्रयासों से पत्नी के साथ सहयोग करने के लिए रजामन्द था और उस सुलह के आधार पर जो उनकी सहायता से कराई गई थी, पति अंततः साथ रहने के लिए तैयार था तथापि, पत्नी केवल छह मास की अवधि तक उसके साथ रही थी । इसके पश्चात् वह अपनी मर्जी से चली गई और उसने सदैव के लिए अपने पति का साथ छोड़ दिया । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मुफ्त विधिक सहायता समिति की सहायता से दाम्पत्य अधिकार तारीख 12 दिसंबर, 2003 को प्रत्यास्थापित कर दिए गए थे तथापि, पत्नी ने पुनः तारीख 11 जून, 2004 को अपने पति का साथ छोड़ दिया और इस प्रकार वह केवल लगभग छह मास की अवधि तक ही उसके साथ रही और अंततः वह अपने पति को छोड़ कर चली गई और उसके पश्चात् उसने अपने पति के पास पुनः आने का कभी भी प्रयास नहीं किया और वर्ष 2004 से अब तक अर्थात् 14 वर्ष की लंबी अवधि से वह अपने पति के साथ नहीं रह रही है और अब एक लंबा समय बीत चुका है ।

20. हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विवाह के समय से जो वर्ष 1997 में हुआ था और उस अवधि के

दौरान जब उसके प्रथम पुत्र का जन्म हुआ था, हमारे समक्ष की अपीलार्थी, अर्जीदार अर्थात् हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के साथ झगड़ा करती रहती थी और वह यह झगड़ा छोटी-छोटी बातों और गैर-महत्वपूर्ण बातों के लिए करती थी । तथापि, जब मामला गंभीर बन गया तब उसने तंग करने के लिए इस बात पर बल दिया कि पति अर्थात् हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी अपने माता-पिता का मकान छोड़ कर सोनारी स्थित उसके पिता के मकान पर रहे और जब हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी अपनी पत्नी की ऐसी गलत मांग को पूरा करने के लिए तैयार नहीं हुआ तब उसने एकपक्षीय रूप से तारीख 5 सितंबर, 1999 को बिना हिचक अपने पति के साथ रहना बंद कर दिया । काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस प्रक्रम पर यह भी विचारणीय है कि पत्नी द्वारा क्रूरता का कोई बड़ा उदाहरण नहीं दिया गया है और न ही उसने पहली बार अपने पति के परित्यजन की अवधि के दौरान से संबंधित कोई उदाहरण उपदर्शित किया है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि उसके अपनी ससुराल छोड़ कर चले जाने के पश्चात् और उनके विवाह-बंधन से पुत्र के जन्म के पश्चात् उसके दूसरे पुत्र से मिलने के लिए पति को कभी भी अनुज्ञात नहीं किया गया जिससे कि उसे अत्यधिक व्यथा पहुंची ।

21. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सदैव ही पहल करते हुए अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए प्रयास करता रहा था जिससे कि वह अपने वैवाहिक जीवन और खुशगवार जीवन का उपभोग कर सके और इसलिए उसने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन फाइल किया था तथापि, उसके बेहतर प्रयासों के बावजूद वह अपने प्रयासों में विफल रहा । इसके प्रतिकूल अपीलार्थी ने भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन क्रूरता के अभिकथन करते हुए 2001 का परिवाद मामला सं. 945 फाइल किया था जो कि पूर्णतया आधार रहित था और इससे भी उसकी एक प्रकार की क्रूरता उपदर्शित होती है और वह स्वयं भी आघात करने के लिए समर्थ है और इसलिए उसे स्वयं अपनी गलतियों का फायदा नहीं दिया जाना चाहिए ।

22. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि मुफ्त विधिक

सहायता समिति ने मध्यक्षेप करते हुए तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन किया था । तथापि, अपीलार्थी ने हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी का पुन: परित्यजन कर दिया और तब से दोनों पृथक्-पृथक् रह रहे हैं । काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि मध्यक्षेप के तथ्य और तारीख 12 दिसंबर, 2003 को किए गए प्रत्यास्थापन के आधार पर यह दलील दी जा सकती है कि यदि पूर्वतर कार्यवाहियों और प्रति-कार्यवाहियों को पृथक् भी रखा जाए तो भी तारीख 11 जून, 2004 को नए सिरे से वाद हेतुक उत्पन्न हो गया था जब पत्नी ने अपनी ससुराल छोड़ दी थी और इस बीच की अवधि गुजर जाने के पश्चात् वर्ष 2008 में निचले न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद के लिए वैवाहिक वाद फाइल किया गया और अब वर्ष 2018 में वैवाहिक वाद संस्थित करने के पश्चात् लगभग 10 वर्ष की अवधि बीत चुकी है जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि पत्नी ने उसका साथ छोड़ कर उसका परित्यजन कर दिया है और अपनी ससुराल छोड़ दी है और इस प्रकार पत्नी ने उसे अपने साथ रखने और बच्चों के साथ रहने से महरूम कर दिया है । अत: पत्नी के विरुद्ध क्रूरता और परित्यजन के दोनों ही आधार पूर्ण रूप से गठित होते हैं और इसलिए विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में तारीख 20 सितंबर, 2016 को पारित निर्णय को कायम रखे जाने और उसकी पुष्टि किए जाने की आवश्यकता है ।

निष्कर्ष

23. दोनों पक्षकारों को सुनने और मामले के अभिलेख और साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् निम्नलिखित संप्रेक्षण किए जाते हैं :–

(i) पक्षकारों के बीच मुफ्त विधिक सहायता समिति की सहायता से तारीख 12 दिसंबर, 2003 को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के पश्चात् पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी के बीच 6 मास के अंदर तारीख 11 जून, 2004 तक कोई प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी, अत: हम यह उचित समझते हैं कि यह सुनिश्चित किया जाए कि क्रूरता के विवाद्यक की अपेक्षा

परित्यजन का पहलू विद्‌यमान है । यद्‌यपि ऐसे मामलों में व्यवहार द्‌वारा ऐसा परित्यजन किया जा सकता है जिसे सही कहा जा सकता है और इसके प्रतिकूल परित्यजन ऐसी किसी प्रकृति का हो सकता है जो दूसरे दम्पत्ति के साथ गंभीर क्रूरता का परिणाम भी उत्पन्न करता हो । तथापि, वर्तमान मामले में यह उल्लेखनीय है कि तारीख 5 सितंबर, 1999 को पत्नी द्‌वारा पहली बार पति का साथ छोड़ा गया था तथापि, इससे पूर्व परित्यजन के लिए ऐसा कोई वृहत कारण नहीं बन सकता । यद्‌यपि दहेज की मांग के अभिकथन किए गए हैं और साथ ही साथ क्रूरता और तंग करने के अभिकथन भी किए गए हैं तथापि, ये अभिकथन साबित किया जाना प्रतीत नहीं होते हैं । तत्पश्चात् पति और पत्नी पृथक्-पृथक् रहने लगे थे और इस बीच में पत्नी ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं के अधीन क्रूरता के अभिकथन करते हुए 2001 का परिवाद मामला सं. 945 फाइल किया था और इसके पश्चात् पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद फाइल किया था । इसके पश्चात् मुफ्त विधिक सहायता समिति की सहायता से मामला सुलझा दिया गया था और अंततः पत्नी ने तारीख 11 जून, 2004 को पुनः परित्यजन कर दिया था । प्रत्यर्थी-पति ने विवाह-विच्छेद के लिए यह वैवाहिक वाद वर्ष 2008 में फाइल किया था और इसके पश्चात् वाद फाइल किए जाने तक इस बीच में पहले ही पर्याप्त अवधि बीत चुकी थी । इसके पश्चात् पत्नी ने अपने पति के साथ रहने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया और इसके प्रतिकूल उसने स्वयं भी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए कोई वाद फाइल नहीं किया । इसके बजाय उसने पति के विरुद्ध परिवाद मामला सं. 945 फाइल करके उसका अभियोजन किया । प्रत्यर्थी-पति के लिए यह अत्यंत अव्यावहारिक और कठिन होगा कि वह उस स्थिति में अपनी पत्नी को अपने साथ लाने में सफल हो जब पत्नी स्वयं ही उसके साथ रहने के लिए हितबद्ध नहीं है और इसके साथ ही साथ वह इस बात के लिए भी रजामंद नहीं है कि वह अपने पति के विरुद्ध दांडिक आरोपों को वापस ले ।

(ii) वर्तमान मामले में साक्ष्य प्रदर्श-ए जो पत्नी द्वारा उद्धृत किया गया है और प्रदर्श-6 जो उसके पति द्वारा उद्धृत किया गया है, से यह प्रकट होता है और पत्नी के इस आशय की ओर संकेत मिलता है कि वह अपने वैवाहिक जीवन को स्थायी रूप से समाप्त करना चाहती है । इस प्रदर्श पर, जो तारीख 11 जून, 2004 का पत्र है, हमारे समक्ष की अपीलार्थी-पत्नी के हस्ताक्षर अंकित हैं जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि वह अपनी मर्जी से अपने पति का घर अर्थात् अपनी ससुराल छोड़कर अपने मायके जा रही है और इसका कारण यह है कि उसके द्वारा किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद वह अपनी ससुराल में रहने के काबिल नहीं है और इस प्रकार वह अपने दो भाइयों के साथ में रह रही है और उसने इस संबंध में पुलिस को भी सूचित कर दिया है । समर्पण के इस आशय के साथ-साथ किसी नए आधार के बिना तारीख 11 जून, 2004 को परित्यजन का उसका भौतिक कार्य जो 12 दिसंबर, 2003 को ससुराल पुनः जाने के लिए उपदर्शित किया गया है, परित्यजन के संघटकों को पूरा करता है ।

(iii) हमें यह प्रतीत होता है कि पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अपना वाद फाइल करके अपनी पत्नी और बच्चों को वापस लाने के लिए युक्तियुक्त प्रयास किए थे जिससे कि वह शांतिपूर्वक अपने वैवाहिक जीवन को गुज़ार सके । तथापि, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के अनुसार उसने खुले न्यायालय में यह कहा था कि वह अपनी ससुराल जाने के लिए और अपने पति के साथ रहने के लिए तैयार नहीं है और उसने अपनी विदाई की तारीख से भी इनकार करते हुए अनुरोध खारिज कर दिया था और इसलिए उसके साक्ष्य के अनुसार भी यह प्रतीत होता है कि मामले की पृष्ठभूमि में पत्नी पूर्व में भी अपने पति के साथ वापस जाने के लिए और उसका साथ निभाने के लिए तैयार नहीं थी । इसके पश्चात् छह मास की अल्प अवधि के पश्चात् जब वे साथ-साथ

रह रहे थे, तब उसने एकपक्षीय रूप से किसी सबूत या न्यायोचित्य के बिना तारीख 11 जून, 2004 को अपने पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था । उसने स्पष्ट रूप से कभी भी अपने पति के साथ रहने के लिए या वापस जाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया । अब वर्ष 2018 चल रहा है और इस प्रकार वर्ष 2004 से लगभग 14 साल बीत चुके हैं । पति ने वर्ष 2004 में अर्थात् वर्ष 2004 से चार वर्ष की अवधि तक उसके वापस आने की प्रतीक्षा करने के पश्चात् विवाह-विच्छेद के लिए वैवाहिक वाद फाइल किया है । अत: पत्नी की ओर से परित्यजन का दोष पूर्ण रूप से बनता है और पति अर्थात् हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी परित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के अनुतोष के लिए उचित रूप से हकदार है ।

(iv) जहां तक भरणपोषण का संबंध है, हम अपने समक्ष के अपीलार्थी के ऊपर छोड़ते हैं कि यदि वह चाहे तो समुचित न्यायालय के समक्ष इस बारे में कार्यवाही (समावेदन) कर सकती है ।

24. उपर्युक्त संप्रेक्षण और विवेचना को दृष्टिगत करते हुए 2008 के वैवाहिक वाद सं. 68 में जमशेदपुर स्थित विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, पूर्वी सिंहभूम द्वारा तारीख 29 सितंबर, 2016 को पारित निर्णय जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने यह आदेश पारित किया है कि "पक्षकारों के बीच तारीख 30 मई, 1997 को सम्पन्न विवाह एतद्द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है" की पुष्टि की जाती है ।

25. तद्नुसार हमारे समक्ष की अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जाती है ।

26. न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह – मैं सहमत हूं ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा (डा.)

बनाम

राज्य और अन्य

(2013 की टी. मामला सं. 44)

तारीख़ 15 नवंबर, 2018

न्यायमूर्ति मनमोहन

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 228 और 276 – विल का प्रोबेट – मंजूरी – आवेदक द्वारा वसीयत-कर्ता द्वारा निष्पादित विल की अधिप्रमाणित प्रति और वसीयत-कर्ता का मृत्यु प्रमाणपत्र सबूत में पेश किया जाना – निष्पादक द्वारा यह भी साबित किया जाना कि उसके द्वारा प्रस्तुत विल वसीयत-कर्ता की अंतिम विल है – आवेदक के हक़ में प्रोबेट मंजूर किया जाना चाहिए ।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 – धारा 291 – प्रशासनिक बंधपत्र – दाखिल करने की अपेक्षा – आवेदक विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी उल्लिखित किया जाना – आवेदक प्रतिभू सहित प्रशासन बंधपत्र दाखिल करने से अभिमुक्ति पाने का हक़दार है ।

आवेदक द्वारा वर्तमान आवेदन मृतक श्रीमती सुदेश मदान की तारीख 31 मार्च, 1992 की रजिस्ट्रीकृत विल के संबंध में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 228 के साथ पठित धारा 276 के अधीन फाइल किया गया है । आवेदन में यह प्रकथन किया गया है कि आवेदक एक ब्रिटिश नागरिक है और आवेदक वसीयत-कर्ता स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान का जिसकी रोमफोर्ड, इंग्लैण्ड में तारीख 8 फरवरी, 2011 को मृत्यु हो गई थी, पति है । यह कहा गया है कि वसीयत-कर्ता ने तारीख 31 मार्च, 1992 को एक विल निष्पादित की थी जिसे इंग्लैण्ड में श्री स्टुअर्ट पी. मेलिनसन और श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने सम्यक्तः

सत्यापित किया था । यह कहा गया है कि आवेदक अपनी पत्नी श्रीमती सुदेश मदान द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल का एकमात्र निष्पादक है । आवेदन में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान आवेदन में वसीयत-कर्ता की तारीख 8 फरवरी, 2011 को मृत्यु हो गई थी और आवेदक ने निष्पादक के नाते सक्षम न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय, लीड्स, युनाइटेड किंग्डम स्थित जिला प्रोबेट रजिस्ट्री के समक्ष प्रोबेट की मंजूरी के लिए आवेदन किया था जो तारीख 12 जनवरी, 2012 को मंजूर किया गया था । तारीख 31 मार्च, 1992 की विल की अधिप्रमाणित प्रति के साथ प्रोबेट की एक प्रति पेश की गई है और उन्हें प्रदर्शों के रूप में चिह्नांकित किया गया है । उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय ने वसीयत-कर्ता स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल की अधिप्रमाणित प्रति स्वीकार की जिसके लिए उच्च न्यायालय, लीड्स, युनाइटेड किंग्डम स्थित जिला प्रोबेट रजिस्ट्री द्वारा तारीख 12 जनवरी, 2012 को प्रोबेट मंजूर किया गया था । इसके अतिरिक्त इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि आवेदक यह साबित करने में सफल रहा है कि स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान ने तारीख 31 मार्च, 1992 को विल निष्पादित की थी और उक्त विल उसकी अंतिम विल और अंतिम वसीयत थी । परिणामत: वर्तमान आवेदन मंजूर किया जाता है । स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान की तारीख 31 मार्च, 1992 की विल जो उपाबद्ध की गई है, संबंध में प्रोबेट आवेदक के हक में मंजूर किया जाता है । (पैरा 11, 12 और 13)

इस प्रक्रम पर आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 291 प्रशासन बंधपत्र दाखिल करने की अपेक्षा करती है जिसका उद्देश्य मृतक की संपदा का सम्यक् और समुचित प्रशासन (इंतजाम) करना है जिसमें निष्पादक और प्रशासन कर्ताओं को संपदा के संबंध में विभिन्न कर्तव्यों का पालन करना होता है । उन्होंने यह दलील दी है कि विल के अधीन एकमात्र

हिताधिकारी के मामले में अधिनियम की धारा 291 के अधीन प्रशासन बंधपत्र आवश्यक नहीं है । विधिक आज्ञा और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आवेदक विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी है, आवेदक को प्रतिभू सहित कोई प्रशासनिक बंधपत्र निष्पादित करने से अभिमुक्ति प्रदान की जाती है । (पैरा 14 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	ए. आई. आर. 2008 (एन. ओ. सी.) 1628 (दिल्ली) = 2008 एस. सी. सी. (आनलाइन) दिल्ली 205 : **धर्मवीर शर्मा** बनाम **राज्य और अन्य** ;	10
[2004]	ए. आई. आर. 2004 दिल्ली 9 = 2003 (71) डी. आर. जे. 446 : **संजय सूरी** बनाम **राज्य और अन्य** ।	15

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2013 का टी. मामला सं. 44.

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 276 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री मनु पडालिया

विरोधी पक्षकार की ओर से –

न्यायमूर्ति मनमोहन – आवेदक द्वारा वर्तमान आवेदन मृतक श्रीमती सुदेश मदान की तारीख 31 मार्च, 1992 की रजिस्ट्रीकृत विल के संबंध में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 228 के साथ पठित धारा 276 के अधीन फाइल किया गया है ।

2. आवेदन में यह प्रकथन किया गया है कि आवेदक एक ब्रिटिश नागरिक है और आवेदक वसीयत-कर्ता स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान का जिसकी रोमफोर्ड, इंग्लैण्ड में तारीख 8 फरवरी, 2011 को मृत्यु हो गई थी, पति है । यह कहा गया है कि वसीयत-कर्ता ने तारीख 31 मार्च,

1992 को एक विल निष्पादित की थी जिसे इंग्लैण्ड में श्री स्टुअर्ट पी. मेलिनसन और श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने सम्यक्तः सत्यापित किया था । यह कहा गया है कि आवेदक अपनी पत्नी श्रीमती सुदेश मदान द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल का एकमात्र निष्पादक है ।

3. यह कहा गया है कि वसीयत-कर्ता श्रीमती सुदेश मदान की मृत्यु के पश्चात् आवेदक अर्थात् उसका पति, प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् उसका पुत्र और प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् उसकी पुत्री के सिवाय अन्य कोई विधिक उत्तराधिकारी नहीं है ।

4. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह बताया है कि आवेदक ने युनाइटेड किंग्डम में प्रोबेट की मंजूरी के लिए एक आवेदन फाइल किया था और उच्च न्यायालय, लीड्स, युनाइटेड किंग्डम की जिला प्रोबेट रजिस्ट्री द्वारा तारीख 12 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 की विल के संबंध में आवेदक के हक में प्रोबेट मंजूर किया गया था । तथापि, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 5 को दृष्टिगत करते हुए उक्त प्रोबेट भारत की संपत्तियों को लागू नहीं हुआ । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 228 के अनुसार विल की एक अधिप्रमाणित प्रति और तारीख 12 जनवरी, 2012 का प्रोबेट आवेदन के साथ संलग्न किया गया है ।

5. वर्तमान आवेदन में तारीख 31 मई, 2013 को सूचना जारी की गई थी । उद्धरण भी जारी करने का निदेश किया गया था, जिसे दैनिक समाचारपत्र "हिन्दुस्तान टाइम्स" में प्रकाशित किया गया । प्रकाशन के पश्चात् विल के संबंध में कोई आक्षेप प्राप्त नहीं हुआ । राज्य के ऊपर सूचनाओं की सम्यक्तः तामील की गई । राज्य द्वारा मूल्यांकन रिपोर्ट फाइल की गई है । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 अर्थात् आवेदक के पुत्र और पुत्री ने यह कहते हुए अपने-अपने शपथपत्र फाइल किए हैं कि यदि प्रोबेट की मंजूरी के लिए वर्तमान आवेदन उनके पिता अर्थात् हमारे समक्ष के आवेदक के हक में मंजूर किया जाता है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है । शपथपत्रों का सुसंगत भाग इस प्रकार है :-

"प्रत्यर्थी सं. 2 का शपथपत्र

1. मेरी माता स्वर्गीय सुदेश मदान द्‌वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल के प्रोबेट के लिए फाइल उपर्युक्त आवेदन में, मैं प्रत्यर्थी सं. 2 हूं । मैंने आवेदन का परिशीलन किया है और मैं उक्त आवेदन के लिए कोई जवाब फाइल नहीं करना चाहता ।

2. यदि प्रोबेट की मंजूरी के लिए वर्तमान आवेदन मेरे पिता/आवेदक डाक्टर सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा के हक में मंजूर किया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।

3. मैं यह शपथपत्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से और बिना किसी दबाव या असम्यक् प्रभाव के दाखिल करता हूं ।

प्रत्यर्थी सं. 3 का शपथपत्र

1. मैं मेरी माता श्रीमती सुदेश मदान द्‌वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल के प्रोबेट के लिए उपर्युक्त उल्लिखित आवेदन में प्रत्यर्थी सं. 3 हूं । मैंने आवेदन का परिशीलन किया है और मैं उक्त आवेदन के लिए कोई जवाब फाइल करना नहीं चाहती ।

2. यदि प्रोबेट की मंजूरी के लिए वर्तमान आवेदन मेरे पिता/आवेदक डाक्टर सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा के हक में मंजूर किया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।

3. मैं यह शपथपत्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से और बिना किसी दबाव या असम्यक् प्रभाव के दाखिल करती हूं ।"

6. आवेदक के विद्‌वान् काउंसेल ने यह कहा है कि वर्तमान आवेदन के लंबन के दौरान आवेदक ने जंगम संपत्तियों की सूची से दो संपत्तियों के निरसन के लिए दो संशोधन आवेदन फाइल किए थे और ये आवेदन इस न्यायालय द्‌वारा तारीख 22 नवंबर, 2017 और तारीख 4 सितंबर, 2018 के आदेशों द्‌वारा मंजूर किए गए थे ।

7. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह कहा है कि स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल के संबंध में वादी के हक में प्रोबेट की मंजूरी में कोई विधिक बाधा नहीं है । वह मूल्यानुसार न्यायालय फीस का संदाय करने के लिए वचनबद्ध हैं जैसाकि संपत्तियों के संबंध में, जो तारीख 31 मार्च, 1992 की विषयवस्तु हैं, न्यायालय फीस अवधारित की जाए और स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान की संपत्ति उन्हें प्रदान की जाए जैसाकि तारीख 31 मार्च, 1992 की विल में उनके द्वारा वर्णित किया गया है ।

8. आवेदक श्री सुरेन्द्र नारायण रायज़ादा ने तारीख 28 जुलाई, 2014 को साक्ष्य के रूप में एक शपथपत्र फाइल किया है और उक्त शपथपत्र को प्रदर्श पी. डब्ल्यू.1/1 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । आवेदक (पी. डब्ल्यू. 1) द्वारा शपथपत्र में यह कहा गया है कि विल पर हस्ताक्षर करने के समय वसीयत-कर्ता की मानसिक स्थिति ठीक थी और स्वास्थ्य अच्छा था और उसने विल साक्षियों की उपस्थिति में सम्यक्तः निष्पादित की थी । यह भी कहा गया है कि वसीयत-कर्ता की रोमफोर्ड, इंग्लैण्ड में तारीख 8 फरवरी, 2011 को मृत्यु हो गई और उसने तारीख 31 मार्च, 1992 की विल छोड़ी है । आवेदक ने वसीयत-कर्ता का मृत्यु प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.1/ए के रूप में, तारीख 31 मार्च, 1992 की विल की अधिप्रमाणित प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी के रूप में और तारीख 12 जनवरी, 2012 के प्रोबेट की सही प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी के रूप में पेश की है ।

9. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 228 इस न्यायालय को किसी विल की अधिप्रमाणित प्रति का प्रोबेट मंजूर करने के लिए तब सशक्त करती है जब मूल विल साबित कर दी गई हो और भारत के राज्यक्षेत्र के बाहर सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय में निक्षिप्त की गई हो । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 228 इस प्रकार है :–

> "**राज्य के बाहर साबित विलों की अधिप्रमाणित प्रति की प्रति उपाबद्ध करके प्रशासन** – जब राज्य की सीमा से बाहर, चाहे भारत

की सीमा के भीतर हो या बाहर, स्थित सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय में कोई विल साबित या निक्षिप्त किया गया है और विल की समुचित रूप से अधिप्रमाणित प्रति पेश की जाती है तो प्रशासन-पत्र ऐसी प्रतियों की एक प्रति को उपाबद्ध करके अनुदत्त किया जा सकेगा ।"

10. इस न्यायालय की एक समन्वय न्यायपीठ ने **धर्मवीर शर्मा** बनाम **राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

"धारा 228 का उद्देश्य मूल विल जो किसी अन्य न्यायालय में निक्षिप्त है, पेश करने की आवश्यकता से अभिमुक्ति देना है । इस उपबंध के अधीन आदेश धारा 276 के समान नहीं है ; तथापि, यह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा की गई मंजूरी के लिए आनुषंगिक है । न्यायालय को ऐसे किसी आवेदन पर कोई आदेश करने से पूर्व इस बात का समाधान करना चाहिए कि उसके समक्ष पेश की गई प्रति धारा 228 में दिए गए उपबंध को पूरा करती है ।"

11. वर्तमान आवेदन में वसीयत-कर्ता की तारीख 8 फरवरी, 2011 को मृत्यु हो गई थी और आवेदक ने निष्पादक के नाते सक्षम न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय, लीड्स, युनाइटेड किंग्डम स्थित जिला प्रोबेट रजिस्ट्री के समक्ष प्रोबेट की मंजूरी के लिए आवेदन किया था जो तारीख 12 जनवरी, 2012 को मंजूर किया गया था । तारीख 31 मार्च, 1992 की विल की अधिप्रमाणित प्रति के साथ प्रोबेट की एक प्रति पेश की गई है और उन्हें प्रदर्शों के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

12. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय ने वसीयत-कर्ता स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान द्वारा तारीख 31 मार्च, 1992 को निष्पादित विल की अधिप्रमाणित प्रति स्वीकार की जिसके लिए उच्च न्यायालय, लीड्स, युनाइटेड किंग्डम स्थित जिला प्रोबेट रजिस्ट्री द्वारा तारीख 12 जनवरी, 2012 को प्रोबेट मंजूर किया गया था । इसके अतिरिक्त इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि आवेदक यह

---

[1] ए. आई. आर. 2008 (एन. ओ. सी.) 1628 (दिल्ली) = 2008 एस. सी. सी. (आनलाइन) दिल्ली 205.

साबित करने में सफल रहा है कि स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान ने तारीख 31 मार्च, 1992 को विल निष्पादित की थी और उक्त विल उसकी अंतिम विल और अंतिम वसीयत थी ।

13. परिणामत: वर्तमान आवेदन मंजूर किया जाता है । स्वर्गीय श्रीमती सुदेश मदान की तारीख 31 मार्च, 1992 की विल जो उपाबद्ध की गई है, संबंध में प्रोबेट आवेदक के हक में मंजूर किया जाता है ।

14. इस प्रक्रम पर आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 291 प्रशासन बंधपत्र दाखिल करने की अपेक्षा करती है जिसका उद्देश्य मृतक की संपदा का सम्यक् और समुचित प्रशासन (इंतजाम) करना है जिसमें निष्पादक और प्रशासन कर्ताओं को संपदा के संबंध में विभिन्न कर्तव्यों का पालन करना होता है । उन्होंने यह दलील दी है कि विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी के मामले में अधिनियम की धारा 291 के अधीन प्रशासन बंधपत्र आवश्यक नहीं है ।

15. तथ्यत: इस न्यायालय की एक समन्वय न्यायपीठ ने **संजय सूरी** बनाम **राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "21. विचारार्थ उद्भूत संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या किसी विल के अधीन किसी एकमात्र हिताधिकारी से जिसने विल सम्यक् रूप से साबित कर दी है, किसी संपदा को जो उसे वसीयत की गई है, और जिसके लिए अन्य किसी दावेदार ने दावा नहीं किया है, प्रदत्त करने के लिए कोई प्रशासन बंधपत्र निष्पादित करने के लिए अपेक्षा की जानी चाहिए । ऐसा केवल अधिनियम की धारा 222 के अधीन कानूनी वर्जन के कारण है जहां उक्त एकमात्र हिताधिकारी और नैसर्गिक वारिस को जो निष्पादक नहीं हैं, प्रोबेट मंजूर नहीं किया गया है । यह विवादित नहीं है कि जहां निष्पादक की नियुक्ति नहीं की गई है वहां प्रतिभू या प्रशासन बंधपत्र दाखिल करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी या बल नहीं दिया जाएगा ।

[1] ए. आई. आर. 2004 दिल्ली 9 = 2003 (71) डी. आर. जे. 446.

22. यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति द्‌वारा पूर्ववर्ती पैरा 16 में यथा उल्लिखित प्रशासक के कर्तव्य जो विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी है, पूरा किया जाना आवश्यक नहीं है । मुझे यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति से संबंधित किसी संपदा को प्रदान करने के लिए प्रशासनिक बंधपत्र या प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा पूर्णतया अनावश्यक है और यह कानूनी उपबंध अर्थात् अधिनियम की धारा 291 के अन्तर्गत पूरी किए जाने के लिए आशयित नहीं हो सकती ।"

16. उपर्युक्त विधिक आज्ञा और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आवेदक विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी है, आवेदक को प्रतिभू सहित कोई प्रशासनिक बंधपत्र निष्पादित करने से अभिमुक्ति प्रदान की जाती है ।

आवेदन में तद्‌नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 102 **पटना**

प्रियंका श्रीवास्तव (श्रीमती)

बनाम

बिपिन बिहारी लाल

(2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट आवेदन सं. 207)

तारीख़ 11 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 11 [संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 4(2) और 25] – बच्चे की संरक्षकता – पिता द्‌वारा उच्च न्यायालय के समक्ष निरोधाधीन बच्चे को न्यायालय के समक्ष पेश कराने के लिए आवेदन –

खारिजी – पिता द्वारा संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन सिविल न्यायालय के समक्ष आवेदन – माता द्वारा पूर्व-न्याय के अधीन वर्जन का अभिकथन – विधिमान्यता – पूर्व-न्याय का सिद्धांत केवल वहां लागू होगा जहां उक्त धारा के अधीन अपेक्षाएं पूरी होती हों – चूंकि पिता को संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन दावा दायर करने का अधिकार है अतः ऐसे किसी मामले में पूर्व-न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होगा ।

मामले के तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी होगा । आवेदक का प्रत्यर्थी के साथ दिसंबर, 2003 में विवाह हुआ था । उनके विवाह से तारीख 30 नवंबर, 2004 को एक पुत्र का जन्म हुआ था । इसके पश्चात् चूंकि वैवाहिक नातेदारी में खटास आ गई इसलिए आवेदक ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला फाइल किया था । उसने सासाराम में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन 2009 का भरणपोषण मामला सं. 25 भी फाइल किया था । प्रत्यर्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 की रिट याचिका सं. 14722 फाइल की थी । उक्त रिट याचिका तारीख 22 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी । आवेदक द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह आवेदन 2014 के संरक्षकता मामला सं. 1 में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2018 को पारित उस आदेश को अपास्त करने के लिए फाइल किया गया है जिसके द्वारा माननीय मुख्य न'यायाधीश ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 और धारा 11 के अधीन तारीख 7 अक्तूबर, 2015 को फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया है । रिट आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में जैसा कि याची के अभिवचनों से तथा 2010 की रिट याचिका सं. 14722 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि इलाहाबाद उच्च न्ययालय के समक्ष फाइल किए गए मामले और मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास के समक्ष पेश किए गए मामले के बीच कोई

समानता नहीं है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया वाद बच्चे के अवैध निरोध का दावा किए जाने के आधार पर बच्चे को पेश करने से संबंधित था । इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि लगभग 5 वर्ष की आयु का बच्चा माता की अभिरक्षा में है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी को बच्चे की अभिरक्षा के लिए समुचित न्यायालय में समावेदन करने की स्वतंत्रता देते हुए रिट याचिका खारिज की थी । मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास के समक्ष फाइल किया गया वाद संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन है । उक्त धारा यह उपबंध करती है कि यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय इस राय का है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक को अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा । पिता ने स्वयं अप्राप्तवय बालक का संरक्षक बनने के लिए दावा किया है और उसे संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन कोई वाद फाइल करने का अधिकार है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट है कि मुख्य न्यायाधीश के समक्ष न तो दो वाद विद्यमान हैं और न ही दो कार्यवाहियां विद्यमान हैं जो रिट याचिका में अन्तर्वलित विषयवस्तु के अंतर्गत आती हों और न ही प्रत्यर्थी द्वारा मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इस बारे में विवाद्यक उठाया गया है और न ही ऐसा विद्यायक रिट न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है । अत: प्रश्नगत वाद न तो पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और न ही इसे आरंभत: खारिज किए जाने की आवश्यकता है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश न तो अधिकारिता रहित है और न ही अनुचित है । (पैरा 10, 11, 14, 15 और 16)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट आवेदन सं. 207.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री अरुण कुमार सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार सिंह – आवेदक के काउंसेल को सुना गया ।

2. आवेदक द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह आवेदन 2014 के संरक्षकता मामला सं. 1 में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2018 को पारित उस आदेश को अपास्त करने के लिए फाइल किया गया है जिसके द्वारा माननीय मुख्य न्'यायाधीश ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 और धारा 11 के अधीन तारीख 7 अक्तूबर, 2015 को फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया है ।

3. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि आक्षेपित आदेश अनुचित है । निचला न्यायालय यह मूल्यांकन करने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया संरक्षकता मामला सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के अधीन वर्जित था । निचले न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 को दृष्टिगत करते हुए वादपत्र आरंभ में ही खारिज करना चाहिए था क्योंकि मामला पहले ही माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एक कार्यवाही में विनिश्चित कर दिया गया था । उन्होंने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी को मामला पुन: व्युत्पन्न करने के लिए और मामले की प्रक्रिया का पुन: दुरुपयोग करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए ।

4. इस प्रक्रम पर मामले के तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी होगा । आवेदक का प्रत्यर्थी के साथ दिसंबर, 2003 में विवाह हुआ था । उनके विवाह से तारीख 30 नवंबर, 2004 को एक पुत्र का जन्म हुआ था । इसके पश्चात् चूंकि वैवाहिक नातेदारी में खटास आ गई इसलिए आवेदक ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला फाइल किया था ।

उसने सासाराम में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन 2009 का भरणपोषण मामला सं. 25 भी फाइल किया था । प्रत्यर्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 की रिट याचिका सं. 14722 फाइल की थी । उक्त रिट याचिका तारीख 22 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी । उक्त रिट याचिका में तारीख 22 मार्च, 2010 को पारित आदेश का प्रवर्तनीय भाग इस प्रकार है :–

> "याची सं. 2 आयु लगभग 5 वर्ष जो कि याची सं. 1 का पुत्र है, प्रत्यर्थी सं. 4 की अभिरक्षा में है जो कि बालक की माता है और यह नहीं कहा जा सकता कि बच्चा अवैध निरोधाधीन है ।
>
> तद्नुसार याचिका में कोई बल नहीं है और यह खारिज की जाती है ।
>
> तथापि, याची सं. 1, यदि वह ऐसा करना चाहे तो इस याचिका में दावा किए गए अनुतोष के लिए समुचित न्यायालय में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र है ।"

इसके पश्चात् प्रत्यर्थी ने सासाराम में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास के समक्ष 2014 का संरक्षकता मामला सं. 1 फाइल किया जिसमें उसने अप्राप्तवय यश श्रीवास्तव की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया । याची ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 और धारा 11 के अधीन एक आवेदन फाइल किया और इस आधार पर 2014 का संरक्षकता मामला सं. 1 के वादपत्र को खारिज करने के लिए अनुरोध किया कि वाद पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है । विद्वान् मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् तारीख 13 फरवरी, 2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया ।

5. तारीख 13 फरवरी, 2018 के उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान सिविल प्रकीर्ण मामला फाइल किया गया है ।

6. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 इस प्रकार है :–

> "11. **पूर्व-न्याय** – कोई भी न्यायालय किसी ऐसे वाद या

विवाद्यक का विचारण नहीं करेगा जिसमें प्रत्यक्षत: और सारत: विवाद्य-विषय उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले उन्हीं पक्षकारों के बीच के या ऐसे पक्षकारों के बीच के जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, किसी पूर्ववर्ती वाद में भी ऐसे न्यायालय में प्रत्यक्षत: और सारत: विवाद्य रहा है, जो ऐसे पश्चात्वर्ती वाद का या उस वाद का, जिनमें ऐसा विवाद्यक वाद में उठाया गया है, विचारण करने के लिए सक्षम था और ऐसे न्यायालय द्वारा सुना जा चुका है और अन्तिम रूप से विनिश्चित किया जा चुका है ।"

7. पूर्व-न्याय के सिद्धांत के गठन के लिए निम्नलिखित संघटक आवश्यक हैं (i) दो वाद अर्थात् एक पूर्वतर वाद तथा दूसरा पश्चात्वर्ती वाद होना चाहिए ; (ii) मामला प्रत्यक्षतया और सारत: विवाद्य-विषय होना चाहिए चाहे वह दोनों वादों में वस्तुत: हो या निरंतर हो ; (iii) मामला प्रत्यक्षत: या सारत: पश्चात्वर्ती वाद में विवाद्य-विषय होना चाहिए और सुना गया होना चाहिए और अंतत: न्यायालय द्वारा पूर्वतर वाद में विनिश्चित किया गया हो (iv) दोनों वादों में वादों के पक्षकार अथवा उसके अधीन पक्षकार अथवा उसमें किए गए किसी दावे के अधीन पक्षकार एक ही होने चाहिए ; और (v) वह न्यायालय जिसने पूर्वतर वाद विनिश्चित किया है, पश्चात्वर्ती वाद का विचारण करने के लिए सक्षम होना चाहिए ।

8. जहां उपर्युक्त अपेक्षाएं पूरी होती हैं वहां यह कहा जा सकता है कि पश्चात्वर्ती वाद पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है ।

9. पूर्व-न्याय के सिद्धांत के पीछे उद्देश्य यह है कि जब एक बार मामला किसी पूर्वतर कार्यवाही में अवधारित कर दिया गया हो तो इसे पक्षकारों को पुन: उठाने के लिए या मामला बार-बार उठाने के लिए स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए ।

10. वर्तमान मामले में जैसा कि याची के अभिवचनों से तथा 2010 की रिट याचिका सं. 14722 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि इलाहाबाद उच्च न्ययालय के समक्ष फाइल किए गए मामले और मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब

न्यायालय, रोहतास के समक्ष पेश किए गए मामले के बीच कोई समानता नहीं है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया वाद बच्चे के अवैध निरोध का दावा किए जाने के आधार पर बच्चे को पेश करने से संबंधित था । इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि लगभग 5 वर्ष की आयु का बच्चा माता की अभिरक्षा में है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी को बच्चे की अभिरक्षा के लिए समुचित न्यायालय में समावेदन करने की स्वतंत्रता देते हुए रिट याचिका खारिज की थी ।

11. मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रोहतास के समक्ष फाइल किया गया वाद संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन है । उक्त धारा यह उपबंध करती है कि यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय इस राय का है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक को अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा ।

12. 'संरक्षक' शब्द को संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 4(2) के अधीन परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "4(2) 'संरक्षक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसके शरीर की या उसकी संपत्ति की, या उसके शरीर या संपत्ति दोनों की देखरेख करता हो ।"

13. उक्त अधिनियम की धारा 4(3) 'प्रतिपाल्य' शब्द को परिभाषित करती है । इसमें यह कहा गया है कि 'प्रतिपाल्य' से ऐसा अप्राप्तवय अभिप्रेत है जिसके शरीर या संपत्ति, या दोनों के लिए कोई संरक्षक है ।

14. पिता ने स्वयं अप्राप्तवय बालक का संरक्षक बनने के लिए दावा किया है और उसे संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन कोई वाद फाइल करने का अधिकार है ।

15. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्णतया स्पष्ट है कि मुख्य न्यायाधीश के समक्ष न तो दो वाद विद्यमान हैं और न ही दो कार्यवाहियां विद्यमान हैं जो रिट याचिका में अन्तर्वलित विषयवस्तु के अंतर्गत आती हों और न ही प्रत्यर्थी द्वारा मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इस बारे में विवाद्यक उठाया गया है और न ही ऐसा विद्यायक रिट न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है । अत: प्रश्नगत वाद न तो पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और न ही इसे आरंभत: खारिज किए जाने की आवश्यकता है ।

16. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश न तो अधिकारिता रहित है और न ही अनुचित है ।

17. आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि न पाते हुए मुझे इस आवेदन में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

रिट आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 109 **मद्रास**

कटिरप्पन और एक अन्य

बनाम

वैजयंतीमाला और एक अन्य

(2011 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन (पी. डी.) सं. 2678)

तारीख़ 23 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति (सुश्री) पी. टी. आशा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 26, नियम 9 – विभाजन के लिए वाद – बैंक लॉकर में रखी वस्तुओं की सूची बनाने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त नियुक्त करने के लिए अंतरिम आवेदन – प्रतिवादी द्वारा मामले को विलंबित करने का कथन करते हुए

विरोध किया जाना – निचले न्यायालय द्वारा लॉकर में रखे गए दस्तावेजों के निर्देश में न कि आभूषणों के निर्देश में आवेदन भागत: मंजूर किए जाने में कोई अनियमितता नहीं है – अत: पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस घोषणा के लिए 2000 का मूल वाद सं. 60 फाइल किया था कि वह स्वर्गीय नारायणन और द्वितीय प्रतिवादी की दत्तक पुत्री है और इसलिए उसे वाद संपत्ति का विभाजन करके एक भाग आबंटित किया जाए । संक्षेप में उक्त आवेदन में यह प्रतिरक्षा ली गई थी कि प्रथम प्रत्यर्थी/वादी उक्त नारायणन की पुत्री नहीं है और उसे दया के तौर पर कतिपय संपत्तियां दी गई थीं । जब मामला विचारण के लिए नियत किया गया तो प्रथम प्रत्यर्थी ने यह कहते हुए आक्षेपित आवेदन फाइल किया कि लॉकर में रखी संपत्तियां की सूची बनाना उसके लिए और प्रतिवादियों के लिए लॉकर में रखी चीजों के बारे में जानने के लिए लाभकारी होगा और इससे पुनरीक्षण-कर्ताओं को कोई नुकसान नहीं होगा । आवेदक/प्रतिवादियों ने यह कहते हुए उत्तर फाइल किया कि आक्षेपित आवेदन केवल कार्यवाहियों से बचने के प्रयास के रूप में फाइल किया गया है । आवेदकों ने यह दलील दी कि वाद व्यतिक्रम के आधार पर दो बार खारिज और पुन:स्थापित किया जा चुका है और वर्तमान आवेदन अत्यधिक विलंब से फाइल किया गया है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने तारीख 18 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा आवेदन भागत: मंजूर कर लिया । उसने लॉकर में रखी चीजों की सूची बनाने के लिए और दस्तावेजों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए और इस आशय की एक रिपोर्ट फाइल करने के लिए अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति की । पुनरीक्षण कर्ताओं/प्रतिवादियों ने उक्त आदेश को आक्षेपित करते हुए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है । यह पुनरीक्षण आवेदन विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक न्यायालय), धर्मपुरी द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 60 में फाइल किए गए 2011 के अंतरिम आवेदन सं. 11 में तारीख 18 जुलाई, 2011 को पारित उस आदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल किया गया है जिसके

द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा भारतीय स्टेट बैंक, मरंडाहाली शाखा में मृतक नारायणन के नाम में रखे गए लॉकर की संपत्ति सूची बनाने के लिए और उक्त लाकर में रखे दस्तावेजों, आभूषणों और अन्य चीजों के ब्यौरों का उल्लेख करने के लिए और फोटो चित्र लेने के लिए तथा इस बारे में विस्तृत रिपोर्ट फाइल करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को भागत: मंजूर किया है । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोनों पक्षों को सुना गया और दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आवेदन मुख्य रूप से प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उस संपत्ति अनुसूची के निर्देश में दावे को साबित करने के लिए आशयित है जिसमें आभूषण, सावधि जमा और अन्य दस्तावेज सम्मिलित हैं । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने आभूषणों के संबंध में अनुरोध को ठीक ही नामंजूर किया है । तथापि, उसने उन दस्तावेजों के जो लॉकर में रखे हुए हैं, निर्देश के साथ आवेदन मंजूर किया है । जैसाकि प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही दलील दी गई है कि चूंकि वाद विभाजन के लिए किया गया है इसलिए यह दोनों पक्षकारों के फायदे के लिए होगा, यदि इसकी सूची और रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष रखी जाए । अत: न्यायालय को विद्वान् जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक न्यायालय), धर्मपुरी द्वारा पारित आदेश में कोई अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । परिणामत: यह सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामत: संबद्ध प्रकीर्ण आवेदन बंद किया जाता है । (पैरा 6 और 7)

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2011 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन (पी. डी.) सं. 2678.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से श्री शरत चन्द्रन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. वलियप्पन

न्यायमूर्ति (सुश्री) पी. टी. आशा – यह पुनरीक्षण आवेदन विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक न्यायालय), धर्मपुरी द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 60 में फाइल किए गए 2011 के अंतरिम आवेदन सं. 11 में तारीख 18 जुलाई, 2011 को पारित उस आदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान् न्यायाधीश ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा भारतीय स्टेट बैंक, मरंडाहाली शाखा में मृतक नारायणन के नाम में रखे गए लॉकर की संपत्ति सूची बनाने के लिए और उक्त लॉकर में रखे दस्तावेजों, आभूषणों और अन्य चीजों के ब्यौरों का उल्लेख करने के लिए और फोटो चित्र लेने के लिए तथा इस बारे में विस्तृत रिपोर्ट फाइल करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को भागत: मंजूर किया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस घोषणा के लिए 2000 का मूल वाद सं. 60 फाइल किया था कि वह स्वर्गीय नारायणन और द्वितीय प्रतिवादी की दत्तक पुत्री है और इसलिए उसे वाद संपत्ति का विभाजन करके एक भाग आबंटित किया जाए । संक्षेप में उक्त आवेदन में यह प्रतिरक्षा ली गई थी कि प्रथम प्रत्यर्थी/वादी उक्त नारायणन की पुत्री नहीं है और उसे दया के तौर पर कतिपय संपत्तियां दी गई थीं । जब मामला विचारण के लिए नियत किया गया तो प्रथम प्रत्यर्थी ने यह कहते हुए आक्षेपित आवेदन फाइल किया कि लाकर में रखी संपत्तियां की सूची बनाना उसके लिए और प्रतिवादियों के लिए लाकर में रखी चीजों के बारे में जानने के लिए लाभकारी होगा और इससे पुनरीक्षण-कर्ताओं को कोई नुकसान नहीं होगा । आवेदक/प्रतिवादियों ने यह कहते हुए उत्तर फाइल किया कि आक्षेपित आवेदन केवल कार्यवाहियों से बचने के प्रयास के रूप में फाइल किया गया है । आवेदकों ने यह दलील दी कि वाद व्यतिक्रम के आधार पर दो बार खारिज और पुन:स्थापित किया जा चुका है और वर्तमान आवेदन अत्यधिक विलंब से फाइल किया गया है ।

3. विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने तारीख 18 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा आवेदन भागत: मंजूर कर लिया । उसने लॉकर में रखी

चीजों की सूची बनाने के लिए और दस्तावेजों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए और इस आशय की एक रिपोर्ट फाइल करने के लिए अधिवक्ता आयुक्त की नियुक्ति की । पुनरीक्षण-कर्ताओं/प्रतिवादियों ने उक्त आदेश को आक्षेपित करते हुए इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है ।

4. आवेदक के विद्वान् काउंसेल श्री शरत चन्द्रन को सुना गया । उन्होंने यह दलील दी है कि वादी/प्रथम प्रत्यर्थी साक्ष्य को संगृहीत करने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त का उपयोग नहीं कर सकता और इसलिए आक्षेपित आवेदन की कार्यवाहियों को टालने के प्रयास के सिवाय और कुछ नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने दो बार व्यतिक्रम करके वाद खारिज होने दिया था और यह आवेदन कार्यवाहियों के लंबा करने के प्रयास के सिवाय और कुछ नहीं है ।

5. इसके प्रतिकूल प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से दलील देते हुए विद्वान् काउंसेल श्री पी. वलियप्पन ने यह दलील दी है कि उन्होंने वादपत्र में लाकर में रखे दस्तावेजों और आभूषणों की विद्यमानता के संबंध में उल्लेख किया है और यह बात दोनों पक्षों के फायदे के लिए होगी, यदि लाकर में रखे आभूषणों की सूची तैयार की जाए ।

6. दोनों पक्षों को सुना गया और दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । यह स्पष्ट है कि आक्षेपित आवेदन मुख्य रूप से प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उस संपत्ति अनुसूची के निर्देश में दावे को साबित करने के लिए आशयित है जिसमें आभूषण, सावधि जमा और अन्य दस्तावेज सम्मिलित हैं । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने आभूषणों के संबंध में अनुरोध को ठीक ही नामंजूर किया है । तथापि, उसने उन दस्तावेजों के जो लॉकर में रखे हुए हैं, निर्देश के साथ आवेदन मंजूर किया है । जैसाकि प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही दलील दी गई है कि चूंकि वाद विभाजन के लिए किया गया है इसलिए यह दोनों पक्षकारों के फायदे के लिए होगा, यदि इसकी सूची और रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष रखी जाए । अत: मुझे विद्वान् जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय), धर्मपुरी द्वारा पारित आदेश में कोई अनियमितता प्रतीत नहीं होती है ।

7. परिणामत: यह सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामत: संबद्ध प्रकीर्ण आवेदन बंद किया जाता है ।

8. इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वाद वर्ष 2007 का है और विचारण के लिए लंबित है इसलिए विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय), धर्मपुरी को यह निदेश दिया जाता है कि वह मामले का यथा-संभव शीघ्रातिशीघ्र तथापि, इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से 4 मास से अनधिक की अवधि के भीतर, निपटान करे ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 114 **मद्रास**

अब्दुल रशीद

बनाम

रक्कम्मल

(1999 की द्विवतीय अपील सं. 1339)

तारीख़ 4 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. हेमलता

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 90 – तीस वर्ष से अधिक पुराना दस्तावेज़ – साबित न करने की अपेक्षा – यह कहा जाना कि दस्तावेज़ अर्थात् विक्रय विलेख विक्रेता द्वारा ऋणों को चुकाने के लिए निष्पादित किया गया था – दावाकर्ता द्वारा न तो मूल विक्रय विलेख और न ही बंधक विलेख साक्ष्य में पेश किया जाना – ऐसी स्थिति में मात्र विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति के संबंध में 30 वर्ष पुराना होने की कानूनी उपधारणा नहीं की जा सकती ।

सभी वाद अर्थात् 1991 का मूल वाद सं. 479, 1994 का मूल वाद सं. 21 और 1994 का मूल वाद सं. 25 संबंधित वादियों द्वारा वाद संपत्ति में अपने हक की घोषणा के लिए और वाद संपत्तियों के ऊपर अपने शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को रोकने हेतु स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के लिए फाइल किए गए थे । 1991 के मूल वाद सं. 479 में की वादी रक्कम्मल 1994 के मूल वाद सं. 21 में प्रथम प्रतिवादी और 1994 के मूल वाद सं. 25 में छठी प्रतिवादी है । चूंकि इन सभी वादों में अन्तर्वलित वाद संपत्तियां और विवाद्यक एक जैसे हैं इसलिए विचारण न्यायालय ने वादों का संयुक्ततः विचारण करते हुए 1991 के मूल वाद सं. 479 में सभी वादों के लिए साक्ष्य अभिलिखित किया । 1991 के मूल वाद सं. 479 में के वादी ने पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-9 को चिह्नांकित कराया । प्रतिवादियों की ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-52 चिह्नांकित कराए गए । विचारण न्यायालय द्वारा वाद संपत्ति का निरीक्षण करने के लिए एक अधिवक्ता-आयुक्त की नियुक्ति की गई थी और उसने अपनी रिपोर्ट (प्रदर्श सी-1) और रेखांकन (प्रदर्श सी-2) फाइल किया है । जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम की फाइल पर के 1991 के मूल वाद सं. 479 में प्रतिवादी और 1994 के मूल वाद सं. 21 तथा 1994 के मूल वाद सं. 25 में के वादियों ने क्रमशः वर्तमान अपीलें फाइल की हैं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आरंभतः यह उल्लेख किया जा सकता है कि जहां प्रत्यर्थी/वादियों ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि प्रदर्श बी-2 एक कूटरचित दस्तावेज है और इरुलांडी तारीख 11 मार्च, 1920 को प्रदर्श बी-2 निष्पादित नहीं कर सकता है क्योंकि उसकी तारीख 25 फरवरी, 1915 को मृत्यु हो गई थी जैसा कि प्रदर्श ए-3 से प्रदर्शित है इसलिए अपीलार्थियों का यह आबद्धकर कर्तव्य है कि वे यह साबित करें कि इरुलांडी ने तारीख 11 मार्च, 1920 को मूल विक्रय विलेख प्रदर्श बी-2 निष्पादित किया था । प्रदर्श बी-2 के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विक्रय विलेख विक्रेता इरुलांडी द्वारा तारीख 15 फरवरी, 1916 के एक बंधक विलेख के द्वारा इब्राहीम राथर और इबुरामूसा राथर

से लिए गए बंधक ऋण के निर्मोचन के लिए निष्पादित किया गया था । अपीलार्थी ने न तो प्रदर्श बी-2 की मूल प्रति और न ही तारीख 15 फरवरी, 1916 का बंधक विलेख प्रस्तुत किया है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने 1989 के मू. सं. 271 में तारीख 7 मार्च, 1991 को राजस्व खंड अधिकारी की कार्यवाहियों (प्रदर्श बी-11) का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि राजस्व खंड अधिकारी ने स्पष्ट निबंधनों में यह अभिनिर्धारित किया है कि रक्कम्मल यह साबित नहीं कर सकी है कि इरुलांडी की तारीख 25 फरवरी, 2015 को मृत्यु हो गई थी और यह भी अभिनिर्धारित किया है कि सर्वेक्षण सं. 567/1 के उत्तरी ओर 10 वर्ष पुराने नारियल के वृक्ष हैं और इसके दक्षिण ओर चीनाबादाम के पौधे हैं । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान राजस्व खंड अधिकारी के आदेश (प्रदर्श बी-11) की ओर दिलाया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि रक्कम्मल (हमारे समक्ष की प्रत्यर्थी) ने यह स्वीकार किया है कि उसने वाद संपत्तियों में कोई फसल नहीं बोई है । प्रदर्श बी-11 के आगे परिशीलन से यह भी उपदर्शित होता है कि सर्वेक्षण सं. 567/2 के पश्चिम ओर एक मंदिर है जो इरुलांडी मंदिर कहा जाता है और सामान्य जनता (हिन्दू) इरुलांडी देवता की पूजा करते हैं । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अपीलार्थी मुस्लिम हैं । इसके अतिरिक्त राजस्व खंड अधिकारी, रामनाथपुरम द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध प्रत्यर्थी रक्कम्मल ने जिला राजस्व अधिकारी के समक्ष एक पुनरीक्षण फाइल किया था और जिला राजस्व अधिकारी ने ना. का. बी-5/22627/91 में पारित अपने तारीख 10 फरवरी, 1992 के आदेश (प्रदर्श बी-12) द्वारा पुनरीक्षण खारिज कर दिया था जो मुख्यतया जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम के समक्ष 1991 के मूल वाद सं. 479 में वाद के लंबन पर आधारित था । तथ्यत: 1991 के मूल वाद सं. 479 में के प्रतिवादियों ने तहसीलदार द्वारा रक्कम्मल के हक में पट्टा मंजूर करने के आदेशों के विरुद्ध राजस्व खंड अधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था और केवल इस आवेदन में आदेश पारित किए गए थे । प्रथम अपील न्यायालय के सभी संप्रेक्षण विधि के आधारभूत सिद्धांतों पर आधारित हैं और चूंकि प्रत्यर्थी/वादी रक्कम्मल ने वाद संपत्तियों के ऊपर

अपना हक साबित कर दिया है इसलिए हक के आधार पर कब्जा साबित है और तथ्यत: उसके हक में तहसीलदार, रामनाथपुरम द्वारा पट्टा भी जारी किया गया था । मेरे द्वारा अभिकथित उपर्युक्त सभी तर्कों को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय अपीलें विफल होती हैं और इसलिए खारिज की जाती हैं । (पैरा 13, 15, 16, 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1998]	1998 ए. आई. एच. सी. 3094 (मद्रास) : **एस. रत्नम्मल** बनाम **मोत्तदू और अन्य** ;	10
[1998]	ए. आई. आर. 1998 मद्रास 287 : **कौशल्या अम्मल** बनाम **वल्लीअम्मई अम्मल और एक अन्य** ;	12
[1997]	आई. एल. आर. 1997 (मद्रास) 1051 : **भुवनेश्वरी** बनाम **मुराहारी (मृतक) और एक अन्य** ;	14
[1988]	ए. आई. आर. 1988 इलाहाबाद 57 : **अली हसन** बनाम **मतीउल्लाह** ;	10
[1988]	ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 608 = (1972) 1 एस. सी. सी. 9 : **पी. सी. पुरुषोत्तम रेडियार** बनाम **पेरुमल** ;	10
[1968]	ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 947 : **के. वी. सुब्बाराजू** बनाम **एस. सुब्बाराजू** ;	14
[1956]	ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 305 : **हरिहर प्रसाद सिंह और एक अन्य** बनाम **देव नारायण प्रसाद और अन्य** ;	14
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 606 : **सीतल दास** बनाम **संतराम और अन्य** ।	14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की द्वितीय अपील सं. 1339.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वी. सीतारंजन दास

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. अरूमुगम और मैसर्स अजमल एसोसिएटस

न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. हेमलता – जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम की फाइल पर के 1991 के मूल वाद सं. 479 में प्रतिवादी और 1994 के मूल वाद सं. 21 तथा 1994 के मूल वाद सं. 25 में के वादियों ने क्रमश: वर्तमान अपीलें फाइल की हैं ।

2. सभी वाद अर्थात् 1991 का मूल वाद सं. 479, 1994 का मूल वाद सं. 21 और 1994 का मूल वाद सं. 25 संबंधित वादियों द्वारा वाद संपत्ति में अपने हक की घोषणा के लिए और वाद संपत्तियों के ऊपर अपने शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को रोकने हेतु स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के लिए फाइल किए गए थे ।

3. 1991 के मूल वाद सं. 479 में की वादी रक्कम्मल 1994 के मूल वाद सं. 21 में प्रथम प्रतिवादी और 1994 के मूल वाद सं. 25 में छठी प्रतिवादी है । चूंकि इन सभी वादों में अन्तर्वलित वाद संपत्तियां और विवाद्यक एक जैसे हैं इसलिए विचारण न्यायालय ने वादों का संयुक्तत: विचारण करते हुए 1991 के मूल वाद सं. 479 में सभी वादों के लिए साक्ष्य अभिलिखित किया । 1991 के मूल वाद सं. 479 में के वादी ने पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-9 को चिह्नांकित कराया । प्रतिवादियों की ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-52 चिह्नांकित कराए गए । विचारण न्यायालय द्वारा वाद संपत्ति का निरीक्षण करने के लिए एक अधिवक्ता-आयुक्त की नियुक्ति की गई थी और उसने अपनी रिपोर्ट (प्रदर्श सी-1) और रेखांकन (प्रदर्श सी-2) फाइल किया है ।

4. विद्वान् जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम ने आवश्यक विवाद्यक

विरचित करने के पश्चात् 1991 का मूल वाद सं. 479 खारिज कर दिया और 1994 का मूल वाद सं. 21 तथा 1994 का मूल वाद सं. 25 डिक्री कर दिया ।

5. वादी रक्कम्मल ने विद्वान् जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम द्वारा तारीख 22 नवंबर, 1995 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर प्रधान जिला न्यायाधीश, रामनाथपुरम के समक्ष 1996 के ए. एस. मूल वाद सं. 101, 1996 के ए. एस. सं. 125 और 1997 के ए. एस. सं. 100 में अपीलें फाइल कीं । विद्वान् प्रधान जिला न्यायाधीश, रामनाथपुरम ने अभिलेख पर के साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् सभी अपीलें मंजूर कर लीं और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष उलट दिए ।

6. अत: प्रतिवादी द्वारा द्वितीय अपीलें फाइल की गई हैं ।

7. पक्षकारों की सुविधा के लिए पक्षकारों को विचारण न्यायालय में उनकी स्थिति के अनुसार निर्दिष्ट किया जा रहा है और समुचित स्थानों पर द्वितीय अपील में उन्हें उनकी हैसियत के अनुसार, यदि आवश्यक हो, निर्दिष्ट किया जाएगा ।

8. 1991 के मूल वाद सं. 479 में वादी रक्कम्मल का यह पक्षकथन है कि वाद संपत्ति मूल रूप से उसके नाना इरुलांडी की थी और वह उत्तराधिकार द्वारा वाद संपत्ति का उपभोग कर रही है जैसा कि बंधक विलेख प्रदर्श ए-1 और प्रदर्श ए-2 द्वारा और यू. डी. आर. पट्टा प्रदर्श ए-4 द्वारा साबित है । उसने वाद संपत्तियों के ऊपर अपना कब्जा उपदर्शित करने के लिए प्रदर्श ए-7 से प्रदर्श ए-9 किस्त रसीदें फाइल की हैं । उसके द्वारा यह भी कहा गया है कि प्रतिवादी वाद संपत्तियों के ऊपर किसी भी अधिकार के बिना उसके शांतिपूर्ण कब्जे और वाद संपत्तियों के उसके उपभोग में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे हैं और इसलिए उसने वाद संपत्तियों के ऊपर अपने हक की घोषणा के लिए और प्रतिवादियों को वाद संपत्तियों के ऊपर अपने शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए 1991 का मूल वाद सं. 479 फाइल किया ।

9. वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा निम्नलिखित आधारों पर वाद का विरोध किया गया था :–

(i) यद्यपि वाद संपत्तियां मूल रूप से इरुलांडी की थीं तथापि, उक्त इरुलांडी ने वाद संपत्तियां तारीख 11 मार्च, 2000 के रजिस्ट्रीकृत विलेख के अधीन सीनिखतर जलालउद्दीन के हक में विक्रीत कर दी थीं जिसकी रजिस्ट्रीकृत प्रति को प्रदर्श बी-2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है ।

(ii) सीनिखतर जलालउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसके तीन पुत्र वाद संपत्तियों का उपभोग कर रहे थे और उनके पश्चात् प्रतिवादियों के विधिक वारिस संपत्तियों का उपभोग कर रहे हैं । वादी रक्कम्मल का वाद संपत्तियों के ऊपर कोई अधिकार नहीं है और इसलिए उनके द्वारा फाइल किया गया वाद डिक्री किया जाना चाहिए और वादी रक्कम्मल द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किया जाना चाहिए ।

10. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सीतारंजन दास ने यह दलील दी है कि प्रथम अपील न्यायालय ने प्रतिवादियों (1994 के मूल वाद सं. 21 और 1994 के मूल वाद सं. 25 में वादी) का दावा मुख्यतया इरुलांडी के अभिकथित मृत्यु उद्धरण (प्रदर्श ए-3) के आधार पर खारिज किया था जिसमें यह कहा गया है कि इरुलांडी की तारीख 25 फरवरी, 1915 को मृत्यु हो गई थी जबकि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि प्रदर्श ए-3 में उल्लिखित व्यक्ति वादी रक्कम्मल का नाना था । उन्होंने यह भी दलील दी है कि प्रदर्श ए-3 के अनुसार इरुलांडी की मृत्यु तारीख 20 फरवरी, 1915 को रजिस्ट्रीकृत की गई है जबकि इरुलांडी की मृत्यु तारीख 25 फरवरी, 1915 को हुई थी । अत: उन्होंने यह दलील दी है कि प्रथम अपील न्यायालय का यह विनिश्चय कि इरुलांडी तारीख 11 मार्च, 1920 को विक्रय विलेख (प्रदर्श बी-2) निष्पादित नहीं कर सकता है, गलत है । उन्होंने अगली दलील यह दी है कि प्रथम अपील न्यायालय ने मात्र भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 उद्धृत करते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मूल

विक्रय विलेख प्रदर्श बी-2 के अभाव में दस्तावेज की सत्यता के संबंध में इस बारे में कोई उपधारणा नहीं की जा सकती कि दस्तावेज 30 वर्ष पुराना है । उन्होंने यह विनिर्दिष्ट दलील दी है कि प्रदर्श बी-2 का मूल विलेख खो गया था और इसलिए जब एक बार प्रदर्श बी-2 को द्विवतीय साक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है तब इसे सीनिखतर जलालउद्दीन के हक में वाद संपत्तियों के विक्रय के लिए पर्याप्त सबूत माना जाना चाहिए और इसलिए प्रथम अपील न्यायालय को 1991 के मूल वाद सं. 479 में के वादी के हक में वाद डिक्री नहीं किया जाना चाहिए और वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल किए गए वादों को खारिज नहीं करना चाहिए । इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है :-

(i) **अली हसन** बनाम **मतीउल्लाह**[1] ;

(ii) **पी. सी. पुरुषोत्तम रेडिड्यार** बनाम **पेरुमल**[2] ;

(iii) **एस. रत्नम्मल** बनाम **मोत्तदू और अन्य**[3] ।

11. उन्होंने यह दलील दी है कि जब एक बार द्विवतीयक साक्ष्य पेश करने के लिए मामला बन जाता है तो प्रति की सत्यता के संबंध में रजिस्ट्रार के प्रमाण पत्र के सबूत के सिवाय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 57(5) के अधीन रजिस्ट्रार कार्यालय से प्राप्त प्रमाणित प्रति को स्वीकार किया जा सकता है और उसे सत्य प्रति के रूप में माना जाएगा । उन्होंने यह दलील दी है कि समर्थन में किसी अतिरिक्त मौखिक साक्ष्य के बिना विक्रय विलेख (प्रदर्श बी-2) की प्रमाणित प्रति को पेश करने मात्र से यह पर्याप्तत: उपदर्शित हो जाता है कि मूल दस्तावेज में क्या उल्लिखित है ।

12. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री ए. अरूमुगम ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी ने मृत्यु उद्धरण प्रदर्श ए-3

---

[1] ए. आई. आर. 1988 इलाहाबाद 57.

[2] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 608 = (1972) 1 एस. सी. सी. 9.

[3] 1998 ए. आई. एच. सी. 3094 (मद्रास).

प्रस्तुत किया था जिससे यह उपदर्शित होता है कि इरुलांडी की जिसके संबंध में यह अभिकथित किया गया है कि उसने तारीख 11 मार्च, 1920 को प्रदर्श बी-2 के द्वारा वाद संपत्तियां विक्रीत की थीं, तारीख 25 फरवरी, 1915 को मृत्यु हो गई थी और इन परिस्थितियों के अधीन अपीलार्थियों का यह कर्तव्य था कि वे प्रदर्श बी-2 के निष्पादन को साबित करें क्योंकि किसी विशिष्ट तथ्य के संबंध में सबूत का भार उस व्यक्ति पर जाता है जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 से 103 के अनुसार इसकी विद्यमानता के संबंध में न्यायालय को विश्वास दिलाना चाहता है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि जहां दो पक्षकारों के बीच किसी दस्तावेज के निष्पादन के संबंध में प्रत्यक्ष विवाद्यक हो वहां यह परिस्थिति कि दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत है, स्वयं अपनी सत्यता को साबित करने के लिए और किसी स्वतंत्र सबूत की आवश्यकता से मुक्ति देने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता । उन्होंने इस संबंध में **कौशल्या अम्मल** बनाम **वल्लीअम्मई अम्मल और एक अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि मात्र किसी दस्तावेज को चिह्नांकित करना इसकी अन्तर्वस्तु को साबित करने के बराबर नहीं है ।

13. आरंभत: यह उल्लेख किया जा सकता है कि जहां प्रत्यर्थी/वादियों ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि प्रदर्श बी-2 एक कूटरचित दस्तावेज है और इरुलांडी तारीख 11 मार्च, 1920 को प्रदर्श बी-2 निष्पादित नहीं कर सकता है क्योंकि उसकी तारीख 25 फरवरी, 1915 को मृत्यु हो गई थी जैसा कि प्रदर्श ए-3 से प्रदर्शित है इसलिए अपीलार्थियों का यह आबद्धकर कर्तव्य है कि वे यह साबित करें कि इरुलांडी ने तारीख 11 मार्च, 1920 को मूल विक्रय विलेख प्रदर्श बी-2 निष्पादित किया था ।

14. यह भी दलील दी गई है कि प्रदर्श बी-2 तीस वर्ष से अधिक पुराना है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 के अनुसार कोई न्यायालय ऐसे दस्तावेज पर हस्ताक्षर के संबंध में और उसके प्रत्येक भाग के संबंध में कानूनी उपधारणा कर सकता है । प्रथम अपील

---

[1] ए. आई. आर. 1998 मद्रास 287.

न्यायालय ने (i) **सीतल दास** बनाम **संतराम और अन्य**[1] (ii) **हरिहर प्रसाद सिंह और एक अन्य** बनाम **देव नारायण प्रसाद और अन्य**[2] (iii) **के. वी. सुब्बाराजू** बनाम **एस. सुब्बाराजू**[3] (iv) **भुवनेश्वरी** बनाम **मुराहारी (मृतक) और एक अन्य**[4] वाले मामलों का निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई न्यायालय भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 के अधीन ऐसे किसी दस्तावेज की जो 30 वर्ष से अधिक पुराना हो, प्रमाणित प्रति के संबंध में कानूनी उपधारणा नहीं कर सकता ।

15. प्रदर्श बी-2 के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि विक्रय विलेख विक्रेता इरुलांडी द्वारा तारीख 15 फरवरी, 1916 के एक बंधक विलेख के द्वारा इब्राहीम राथर और इबुरामूसा राथर से लिए गए बंधक ऋण के निर्मोचन के लिए निष्पादित किया गया था । अपीलार्थी ने न तो प्रदर्श बी-2 की मूल प्रति और न ही तारीख 15 फरवरी, 1916 का बंधक विलेख प्रस्तुत किया है ।

16. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने 1989 के मूल वाद सं. 271 में तारीख 7 मार्च, 1991 को राजस्व खंड अधिकारी की कार्यवाहियों (प्रदर्श बी-11) का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि राजस्व खंड अधिकारी ने स्पष्ट निबंधनों में यह अभिनिर्धारित किया है कि रक्कम्मल यह साबित नहीं कर सकी है कि इरुलांडी की तारीख 25 फरवरी, 2015 को मृत्यु हो गई थी और यह भी अभिनिर्धारित किया है कि सर्वेक्षण सं. 567/1 के उत्तरी ओर 10 वर्ष पुराने नारियल के वृक्ष हैं और इसके दक्षिण ओर चीनाबादाम के पौधे हैं । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान राजस्व खंड अधिकारी के आदेश (प्रदर्श बी-11) की ओर दिलाया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि रक्कम्मल (हमारे समक्ष की प्रत्यर्थी) ने यह स्वीकार किया है कि उसने वाद

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 606.

[2] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 305.

[3] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 947.

[4] आई. एल. आर. 1997 (मद्रास) 1051.

संपत्तियों में कोई फसल नहीं बोई है । प्रदर्श बी-11 के आगे परिशीलन से यह भी उपदर्शित होता है कि सर्वेक्षण सं. 567/2 के पश्चिम ओर एक मंदिर है जो इरुलांडी मंदिर कहा जाता है और सामान्य जनता (हिन्दू) इरुलांडी देवता की पूजा करते हैं । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अपीलार्थी मुस्लिम हैं । इसके अतिरिक्त राजस्व खंड अधिकारी, रामनाथपुरम द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध प्रत्यर्थी रक्कम्मल ने जिला राजस्व अधिकारी के समक्ष एक पुनरीक्षण फाइल किया था और जिला राजस्व अधिकारी ने ना. का. बी-5/22627/91 में पारित अपने तारीख 10 फरवरी, 1992 के आदेश (प्रदर्श बी-12) द्वारा पुनरीक्षण खारिज कर दिया था जो मुख्यतया जिला मुंसिफ, रामनाथपुरम के समक्ष 1991 के मूल वाद सं. 479 में वाद के लंबन पर आधारित था । तथ्यत: 1991 के मूल वाद सं. 479 में के प्रतिवादियों ने तहसीलदार द्वारा रक्कम्मल के हक में पट्टा मंजूर करने के आदेशों के विरुद्ध राजस्व खंड अधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था और केवल इस आवेदन में आदेश पारित किए गए थे ।

17. प्रथम अपील न्यायालय के सभी संप्रेक्षण विधि के आधारभूत सिद्धांतों पर आधारित हैं और चूंकि प्रत्यर्थी/वादी रक्कम्मल ने वाद संपत्तियों के ऊपर अपना हक साबित कर दिया है इसलिए हक के आधार पर कब्जा साबित है और तथ्यत: उसके हक में तहसीलदार, रामनाथपुरम द्वारा पट्टा भी जारी किया गया था ।

18. मेरे द्वारा अभिकथित उपर्युक्त सभी तर्कों को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय अपीलें विफल होती हैं और इसलिए खारिज की जाती हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मह.

मीना कुमारी

बनाम

सोहन लाल

(2017 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 3268)

तारीख़ 1 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफ़ीक और न्यायमूर्ति गोवर्धन बरधर

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 9 – पति द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा पति और उसके कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा दहेज के लिए प्रताड़ित करने और क्रूरता बरतने का कथन किया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के अपराधों के लिए रिपोर्ट दर्ज कराई जानी – पति द्वारा इस कथन के समर्थन में कोई साक्ष्य पेश न किया जाना कि उसने पत्नी को अपने घर वापस लाने के लिए कोई गंभीर प्रयास किया था – पत्नी द्वारा पति के साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त कारण है – पति दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री पाने का हक़दार नहीं है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि आवेदक-पति ने तारीख 26 जून, 2014 को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अनावेदक-पत्नी के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु डिक्री की मंजूरी के लिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर के समक्ष एक अर्जी फाइल की थी जिसमें उसने ये प्रकथन किए थे कि दोनों पक्षकारों का विवाह तारीख 16 मई, 2011 को हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार ग्राम लोदीपुरा में सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् अनावेदक-पत्नी कुछ समय तक उसके साथ रहती रही । इसके पश्चात् उसने बार-बार अपने मायके जाना आरंभ कर दिया और तारीख 26 मई, 2013 को वह यह कहकर अपने पिता के साथ अपने मायके

गई थी कि वह 10-15 दिन के अंदर अपनी ससुराल वापस लौट आएगी तथापि, वह वापस नहीं लौटी । आवेदक-पति ने उसे वापस लाने का पूरा प्रयास किया तथापि, अनावेदक-पत्नी वापस नहीं आई और न ही उसके माता-पिता ने उसे वापस भेजा । तारीख 20 जून, 2014 को आवेदक-पति अपने कुटुंब के सदस्यों और नातेदारों के साथ अपनी ससुराल गया किन्तु उसकी पत्नी ने उसके साथ आने से इनकार कर दिया । अनावेदक-पत्नी अपने माता-पिता के दबाव में अपने मायके में रह रही है । अपीलार्थी-अनावेदक-पत्नी द्वारा वर्तमान प्रकीर्ण अपील विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर द्वारा तारीख 12 मई, 2017 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-आवेदक-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल की गई अर्जी को मंजूर करते हुए डिक्री पारित की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि तारीख 19 सितंबर, 2018 के आदेश में यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी-पति, अपीलार्थी-पत्नी को स्थायी निर्वाहिका का संदाय करने के लिए तैयार है तथापि, जब तारीख 30 अक्तूबर, 2018 को मामला न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया गया तो अपीलार्थी-पत्नी स्थायी निर्वाहिका के रूप में 3,00,000/- रुपए के संदाय के बदले में विवाद्यक को सुलझाने के लिए तैयार हुई थी तथापि, वह बाद में मुकर गई और तब प्रत्यर्थी-पति और उसके पिता ने धनराशि का संदाय करने से इनकार कर दिया । अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि अनावेदक-पत्नी ने आवेदक-पति और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध बुरा व्यवहार करने और उसे उसकी ससुराल से निकालने के आरोप लगाए हैं । अनावेदक-पत्नी ने दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की थीं और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया था । उसके अभिकथनों का दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थन होता है । अपीलार्थी-पत्नी ने आवेदन के जवाब में तारीख 2 जनवरी, 2015 को उसे पीटे जाने की घटना का उल्लेख किया है और

भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन अपराधों के लिए 2015 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 12 दर्ज कराने के संबंध में ब्यौरे दिए हैं । अपीलार्थी-पत्नी ने अपनी रिपोर्ट में यह कहा है कि उसे दहेज की मांग के लिए घर से बलपूर्वक निकाल दिया गया था । उसके विवाह के पश्चात् उसकी ससुरालवालों ने उसे तंग किया । वह अपनी ससुराल के वातावरण से खुश नहीं है । अपीलार्थी-पत्नी ने एन. ए. डब्ल्यू.-1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है । उसने अपने शपथ-पत्र में यह कहा है कि उसकी ससुरालवालों ने उसकी वस्तुएं और कीमती आभूषण छीन लिए थे । उसके साथ मानसिक और शारीरिक क्रूरता बरती गई थी और उसके ससुराल के लोग कभी भी उसे बुलाने नहीं आए । यह कथन गलत है कि उसके ससुराल वालों ने तारीख 20 जून, 2014 को विवाद सुलझाने का प्रयास किया था । अपीलार्थी-पत्नी असाध्य परिस्थितियों के अधीन अपने माता-पिता के साथ रह रही है । अपीलार्थी-पत्नी द्वारा साक्ष्य में पेश किए गए शपथ-पत्र में उल्लिखित क्रूरता के अभिकथनों और तथ्यों पर अविश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं है । अभिलेख पर अपीलार्थी-पति द्वारा अनावेदक-पत्नी को अपने घर लाने के लिए कोई सद्भाविक प्रयास करने के संबंध में कोई तर्कसंगत साक्ष्य उपलब्ध नहीं है यद्यपि आवेदक-पति ने यह कहा है कि उसने अनावेदक-पत्नी को अपने घर लाने के लिए प्रयास किए थे तथापि, वह उस तथ्य के संबंध में कोई साक्ष्य पेश करने में विफल रहा है कि उसके प्रयासों के बावजूद अनावेदक-पत्नी ने किसी पर्याप्त कारण के बिना उसके साथ रहने से इनकार कर दिया था । प्रत्यर्थी-पति कटु नातेदारी की स्थिति में अपनी सद्भावना को साबित करने में विफल रहा है जबकि अपीलार्थी-पत्नी ने अपने पति के साथ रहने से इनकार करने के सबूत में अभिलेख पर सामग्री प्रस्तुत की है । परिणामत: अनावेदक-पत्नी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर द्वारा तारीख 12 मई, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । (पैरा 12, 14, 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 3268.

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन सिविल प्रकीर्ण अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री कैलाश शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अशीन्द्र गौतम

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति गोवर्धन बरधर ने दिया ।

न्या. बरधर – अपीलार्थी-अनावेदक-पत्नी (जिसे आगे संक्षेप में 'अनावेदक-पत्नी' कहा गया है) द्वारा वर्तमान प्रकीर्ण अपील विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर द्वारा तारीख 12 मई, 2017 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-आवेदक-पति (जिसे आगे संक्षेप में 'आवेदक-पति' कहा गया है) द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल की गई अर्जी को मंजूर करते हुए डिक्री पारित की गई है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि आवेदक-पति ने तारीख 26 जून, 2014 को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अनावेदक-पत्नी के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु डिक्री की मंजूरी के लिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर के समक्ष एक अर्जी फाइल की थी जिसमें उसने ये प्रकथन किए थे कि दोनों पक्षकारों का विवाह तारीख 16 मई, 2011 को हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार ग्राम लोदीपुरा में सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् अनावेदक-पत्नी कुछ समय तक उसके साथ रहती रही । इसके पश्चात् उसने बार-बार अपने मायके जाना आरंभ कर दिया और तारीख 26 मई, 2013 को वह यह कहकर अपने पिता के साथ अपने मायके गई थी कि वह 10-15 दिन के अंदर अपनी ससुराल वापस लौट आएगी तथापि, वह वापस नहीं लौटी । आवेदक-पति ने उसे वापस लाने का पूरा प्रयास किया तथापि, अनावेदक-पत्नी वापस नहीं आई और न ही उसके माता-पिता ने उसे वापस भेजा । तारीख 20 जून, 2014 को आवेदक-पति अपने कुटुंब के सदस्यों और नातेदारों के साथ अपनी ससुराल गया

किन्तु उसकी पत्नी ने उसके साथ आने से इनकार कर दिया । अनावेदक-पत्नी अपने माता-पिता के दबाव में अपने मायके में रह रही है ।

3. अनावेदक-पत्नी ने अर्जी में किए गए कथनों से इनकार करते हुए अपना जवाब प्रस्तुत किया । अनावेदक-पत्नी ने अपने जवाब में विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिवाक् किया कि उसे दहेज की मांग को लेकर उसकी ससुराल से निकाल दिया गया था जिसके लिए उसने पुलिस थाना महिला थाना, सवाई माधोपुर में 2015 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 112 भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 406 के अधीन अपराधों के लिए दर्ज कराई थी । उसे विवाह के पश्चात् तंग किया गया था, प्रताड़ित किया गया था और उसके साथ अत्यधिक मारपीट करके उसके साथ क्रूरता बरती गई थी । आवेदक-पति द्वारा उसकी सभी दहेज की वस्तुएं छीन ली गई थीं । अनावेदक-पत्नी ने अपने जवाब में यह अनुरोध किया कि उपर्युक्त परिस्थितियों के अधीन उसका आवेदक-पति के साथ रहना पूर्णतया असंभव है और उसने खर्चों के साथ अर्जी की खारिजी के लिए अनुरोध किया ।

4. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर 3 विवाद्यक विरचित किए जो इस प्रकार हैं :–

> "क. क्या अनावेदक-पत्नी ने किसी उचित कारण के बिना आवेदक-पति को त्यक्त कर दिया है ?
>
> ख. क्या आवेदक-पति, अनावेदक-पत्नी के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अधिकार रखता है ?
>
> ग. अनुतोष ?"

5. आवेदक-पति ने अपने साक्ष्य में ए. डब्ल्यू.-1 के रूप में स्वयं की, ए. डब्ल्यू.-2 के रूप में राम दयाल की, ए. डब्ल्यू.-3 के रूप में मिश्री लाल की और ए. डब्ल्यू.-4 के रूप में राम निवास की परीक्षा कराई । अनावेदक-पत्नी ने अपने साक्ष्य में एन. ए. डब्ल्यू.-1 के रूप में स्वयं की और एन. ए. डब्ल्यू.-2 के रूप में मैना की परीक्षा कराई ।

6. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 12 मई, 2017 के निर्णय द्वारा आवेदक-पति द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल की गई अर्जी को मंजूर करते हुए इस आशय की डिक्री पारित करते हुए अनावेदक-पत्नी को यह आदेश दिया कि वह आवेदक-पति के साथ पत्नी के रूप में रहे ।

7. अनावेदक-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अनावेदक-पत्नी के कथनों पर विचार न करके गलती की है क्योंकि उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि आवेदक-पति और उसके कुटुंब के सदस्य उसे प्रताड़ित करते थे और दहेज की मांग के संबंध में उसे पीटते थे और उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और उसे उसकी ससुराल से बलपूर्वक निकाल दिया गया था । आवेदक-पति और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध एक दांडिक मामला भी रजिस्ट्रीकृत कराया गया था जिसका विचारण लंबित है । आवेदक-पति अनावेदक-पत्नी के साथ नहीं रहना चाहता है और इसलिए उसने सुनियोजित रीति में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अर्जी फाइल की थी । आवेदक-पति द्वारा उसके साथ मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना के कारण उसका अपने पति अर्थात् अर्जीदार के साथ रहना पूर्णतया असंभव हो गया है । आवेदक-पति ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन आवेदन उस दांडिक मामले को विफल करने की दृष्टि से फाइल किया था जो कि दांडिक मामला उसके और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत कराया गया था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष गलत हैं । विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय और डिक्री अभिलेख पर की सामग्री और साक्ष्य पर समुचित रूप से विचार किए बिना सरसरी रीति में पारित की गई है ।

8. आवेदक-पति के विद्वान् काउंसेल ने अपील का विरोध करते हुए विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है ।

9. पक्षकारों की ओर से उपस्थित काउंसेलों को सुना गया और

विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री का परिशीलन करते हुए मामले के सम्पूर्ण अभिलेख की सतर्कतापूर्वक जांच और परीक्षा की गई ।

10. तारीख 19 जुलाई, 2018 को जब मामला न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया गया तब दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों ने पक्षकारों के बीच आपस में समझौते की संभावना के बारे में बताया । उपर्युक्त तारीख को न्यायालय ने आपसी समझौते की संभावना को दृष्टिगत करते हुए दोनों पक्षकारों को तारीख 2 अगस्त, 2018 को न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए निदेश दिया था । न्यायालय ने तारीख 2 अगस्त, 2018 के आदेश में अनावेदक-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को और आवेदक-पति को तारीख 9 अगस्त, 2018 को न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए निदेश दिया था । तथापि, जब तारीख 9 अगस्त, 2018 को दोनों पक्षकार उपस्थित नहीं हुए तब न्यायालय ने हाजिरी के लिए अगली तारीख नियत करते हुए यह आदेश किया कि दोनों पक्षकार तारीख 19 सितंबर, 2018 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों ।

11. तारीख 19 सितंबर, 2018 को अनावेदक-पत्नी उपस्थित नहीं हुई तथापि, आवेदक-पति व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ । न्यायालय ने अनावेदक-पत्नी को उपस्थित होने के लिए अंतिम अवसर दिया और न्यायालय में उपस्थित होने के लिए आदेश पारित किया तथा मामले में तारीख 30 अक्तूबर, 2018 नियत की । यह भी निदेश किया गया था कि आदेश के अननुपालन की दशा में अपील गुण-दोष के आधार पर सुनी जाएगी ।

12. यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि तारीख 19 सितंबर, 2018 के आदेश में यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी-पति, अपीलार्थी-पत्नी को स्थायी निर्वाहिका का संदाय करने के लिए तैयार है तथापि, जब तारीख 30 अक्तूबर, 2018 को मामला न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया गया तो अपीलार्थी-पत्नी स्थायी निर्वाहिका के रूप में 3,00,000/- रुपए के संदाय के बदले में विवाद्यक को सुलझाने के लिए तैयार हुई थी तथापि, वह बाद में मुकर गई और तब प्रत्यर्थी-पति और उसके पिता ने धनराशि का संदाय करने से इनकार कर दिया ।

13. तारीख 30 अक्तूबर, 2018 को अपीलार्थी-पत्नी और प्रत्यर्थी-पति अपने पिता के साथ न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था । तारीख 30 अक्तूबर, 2018 का आदेश इस प्रकार है :-

"प्रत्यर्थी अपने पिता के साथ उपस्थित है । प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि वह कोई पाई नहीं कमाता है । प्रत्यर्थी के पिता ने भी यह कहा है कि उसका पुत्र एक पाई भी नहीं कमाता है । जब प्रत्यर्थी के पिता से इस बारे में पूछा गया कि उसने अपने पुत्र का विवाह क्यों किया तब उसने यह जवाब दिया कि सभी लोग विवाह करते हैं ।

प्रथमदृष्ट्या अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के जो कुछ नहीं कमाता है, साथ न रहने में न्यायोचित है । उसकी हैसियत को एक नौकरानी के समान नहीं माना जा सकता ।

अपीलार्थी 3,00,000/- रुपए की स्थायी निर्वाहिका प्राप्त करके विवाद्यक को सुलझाने के लिए तैयार है जिसमें उसके माता-पिता द्वारा उसके विवाह के समय खर्च किया गया धन भी सम्मिलित है ।

प्रत्यर्थी और उसके पिता ने धनराशि का संदाय करने से इनकार कर दिया है । हम अपील की सुनवाई को स्थगित करते हुए प्रत्यर्थी को विधि की अपेक्षाओं के निबंधनों में भरणपोषण के लिए 1,500/- रुपए प्रतिमास अपीलार्थी को संदाय करने का निदेश करते हैं । यह संदाय नवंबर, 2018 मास से आरंभ होगा । यह संदाय प्रत्येक मास की 10 तारीख को किया जाएगा ।

इस अपील को 12 सप्ताह के पश्चात् सूचीबद्ध किया जाए ।"

14. अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि अनावेदक-पत्नी ने आवेदक-पति और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध बुरा व्यवहार करने और उसे उसकी ससुराल से निकालने के आरोप लगाए हैं । अनावेदक-पत्नी ने दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की थीं और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के

अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया था । उसके अभिकथनों का दस्तावेजी साक्ष्य से समर्थन होता है । अपीलार्थी-पत्नी ने आवेदन के जवाब में तारीख 2 जनवरी, 2015 को उसे पीटे जाने की घटना का उल्लेख किया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन अपराधों के लिए 2015 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 12 दर्ज कराने के संबंध में ब्यौरे दिए हैं । अपीलार्थी-पत्नी ने अपनी रिपोर्ट में यह कहा है कि उसे दहेज की मांग के लिए घर से बलपूर्वक निकाल दिया गया था । उसके विवाह के पश्चात् उसकी ससुरालवालों ने उसे तंग किया । वह अपनी ससुराल के वातावरण से खुश नहीं है । अपीलार्थी-पत्नी ने एन. ए. डब्ल्यू.-1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है । उसने अपने शपथ-पत्र में यह कहा है कि उसकी ससुरालवालों ने उसकी वस्तुएं और कीमती आभूषण छीन लिए थे । उसके साथ मानसिक और शारीरिक क्रूरता बरती गई थी और उसके ससुराल के लोग कभी भी उसे बुलाने नहीं आए । यह कथन गलत है कि उसके ससुराल वालों ने तारीख 20 जून, 2014 को विवाद सुलझाने का प्रयास किया था । अपीलार्थी-पत्नी असाध्य परिस्थितियों के अधीन अपने माता-पिता के साथ रह रही है ।

15. अपीलार्थी-पत्नी द्वारा साक्ष्य में पेश किए गए शपथ-पत्र में उल्लिखित क्रूरता के अभिकथनों और तथ्यों पर अविश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं है । अभिलेख पर अपीलार्थी-पति द्वारा अनावेदक-पत्नी को अपने घर लाने के लिए कोई सद्भाविक प्रयास करने के संबंध में कोई तर्कसंगत साक्ष्य उपलब्ध नहीं है यद्यपि आवेदक-पति ने यह कहा है कि उसने अनावेदक-पत्नी को अपने घर लाने के लिए प्रयास किए थे तथापि, वह उस तथ्य के संबंध में कोई साक्ष्य पेश करने में विफल रहा है कि उसके प्रयासों के बावजूद अनावेदक-पत्नी ने किसी पर्याप्त कारण के बिना उसके साथ रहने से इनकार कर दिया था ।

16. प्रत्यर्थी-पति कटु नातेदारी की स्थिति में अपनी सद्भावना को साबित करने में विफल रहा है जबकि अपीलार्थी-पत्नी ने अपने पति के साथ रहने से इनकार करने के सबूत में अभिलेख पर सामग्री प्रस्तुत की है ।

17. परिणामतः अनावेदक-पत्नी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् कुटुंब न्यायालय, सवाई माधोपुर द्वारा तारीख 12 मई, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 134 **हिमाचल प्रदेश**

झुंखरु राम और अन्य

बनाम

मोही राम और अन्य

(2018 की नियमित द्वितीय अपील सं. 476)

तारीख़ 29 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति सुरेश्वर ठाकुर

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 62 – भोगाधिकार के साथ कृषि भू-संपत्ति का बंधक – प्रतिवादियों के पूर्व-उत्तराधिकारी द्वारा जमाबंदी में अपने नाम की प्रविष्टि कराया जाना – बंधक कर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा बंधक धन के संदाय के लिए इच्छा जाहिर करते हुए संपत्ति के मोचन के लिए वाद – मोचन में किसी प्रकार की कोई बाधा उपदर्शित न की जानी – बंधक कर्ता वाद संपत्ति का मोचन कराने का हक़दार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वादीगण वादपत्र में यथा उल्लिखित वाद भूमि के स्वामी और काबिज हैं । तारीख 13 जून, 1985 को वादीगण और अन्य सह-स्वामियों अर्थात् स्वर्गीय श्रीमती सुरमी और स्वर्गीय श्री रामसा ने उपर्युक्त भूमि प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पिता कुंदन सिंह और प्रतिवादी सं. 1 के पिता झीनू के हक में सहायक कलक्टर

द्वितीय श्रेणी, कुपवी के समक्ष बंधक की थी । प्रतिवादीगण वाद भूमि पर खेती कर रहे हैं और 2,000/- रुपए की धनराशि पर किराए के बदले में उक्त भूमि के उत्पादों और फसलों का उपभोग कर रहे हैं । श्रीमती सुरमी और श्रीमती रामसा जिनकी संतान रहित मृत्यु हो गई थी, की मृत्यु के पश्चात् वादीगण ने खसरा सं. 3701 रकबा 02.17 बीघा का मोचन करा लिया और इस संबंध में तारीख 27 जनवरी, 1987 को मामला सं. 12-×III/85 में सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी द्वारा आदेश पारित किया गया था और इस आशय का नामांतरण सं. 8549 भी कर दिया गया था । वाद भूमि अभी भी बंधक के अधीन है और प्रतिवादियों के कब्जे में है । अब वादीगण उक्त संपत्ति का मोचन कराना चाहते हैं और 2,000/- रुपए की बंधक धनराशि का संदाय करने के लिए तैयार हैं । वादी ने नवंबर, 2011 के द्वितीय सप्ताह में प्रतिवादियों से बंधक धन स्वीकार करने और भूमि का कब्जा परिदत्त करने के लिए अनुरोध किया था और तारीख 5 दिसंबर, 2011 को एक विधिक सूचना भी जारी की थी किंतु प्रतिवादियों द्वारा उसके सद्भाविक अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । तथ्यत: प्रतिवादी वादी की मूल्यवान भूमि को हड़पना चाहते हैं । चूंकि ऐसी स्थिति है इसलिए वादियों के पास वर्तमान वाद फाइल करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचा है । प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया जिसमें उन्होंने सुनवाई के अधिकार, विबंध, और पक्षकारों के असंयोजन और कुसंयोजन, वाद हेतुक, मूल्यांकन तथा गुण-दोष के आधार पर परिसीमा इत्यादि के संबंध में आरंभिक आक्षेप करते हुए यह निवेदन किया कि वादीगण कभी भी वाद भूमि पर काबिज नहीं रहे हैं और न ही उन्होंने किसी भी रीति में इस भूमि पर खेती की है । तथ्यत: वाद भूमि बहुत पहले वर्ष 1900 ए. डी. में प्रतिवादियों के पूर्वजों को बंधक की गई थी और इस भूमि का यथा विहित कानूनी अवधि के भीतर मोचन नहीं कराया गया था । अत: अब प्रतिवादी अत्यधिक समय बीत जाने के कारण इसके स्वामी बन गए हैं । इसके अतिरिक्त बंधक के समय वाद भूमि 'बंजर कदीम' के रूप में वर्णित की गई थी और यह उबड़-खाबड़ भूमि थी और खेती करने योग्य नहीं थी । इस भूमि को

प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारियों द्वारा अत्यधिक धनराशि खर्च करके विकसित किया गया था । इस बात से स्पष्ट रूप से इनकार किया गया है कि बंधक तारीख 13 जून, 1985 को हुआ था और इस संबंध में सहायक कलक्टर, द्वितीय श्रेणी द्वारा आदेश पारित किया गया था और नामांतरण के बारे में यह कहा गया है कि यह अकृत और शून्य है । इसके अतिरिक्त वाद संपत्ति के भाग के बंधक के तथ्य से भी इनकार किया गया है और यह कहा गया है कि ऐसा नहीं किया गया था । इसके अतिरिक्त वादियों द्वारा इसके प्रतिकूल कथन किया गया है और एक स्थान पर उन्होंने यह कहा है कि बंधक धन सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी के समक्ष मोचन की कार्यवाहियों के दौरान संदत्त किया गया था और अब वे पुन: संदाय करने के लिए भी तैयार हैं । यह प्रकथन किया गया है कि वादियों को वाद संपत्ति का मोचन कराने का कोई अधिकार नहीं है । वर्तमान अपील दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित एक जैसे उन निर्णयों के विरुद्ध फाइल की गई है जिनके द्वारा वाद संपत्ति के मोचन के लिए वादी का वाद डिक्री करते हुए प्रतिवादियों के प्रति-दावे को खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-6/ए से सत्यता की उपधारणा संबद्ध की गई है और यह प्रदर्श वाद भूमि से संबंधित जमाबंदी की एक प्रति है जो वर्ष 1939-40 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-6/बी. वाद भूमि से संबंधित जमाबंदी की प्रति है जो वर्ष 1944-45 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/एफ वाद भूमि से संबंधित जमाबंदी की प्रति है जो वर्ष 1951-52 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/जी., प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/एच तथा प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/के वाद भूमि से संबंधित जमाबंदियों की प्रतियां हैं और क्रमश: वर्ष 1986-87, 1991-92 और 1996-97 से संबंधित हैं । उपर्युक्त सभी प्रदर्शों से प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारियों का संबंध परिलक्षित होता है और उनके नाम कब्जे के स्तम्भ में अभिलिखित हैं जो कि वाद भूमि के बंधकदारों के रूप में काबिज़ हैं । उपर्युक्त सत्यता की उपधारणा निश्चायक रूप से और विशेष रूप से इस

संबंध में खंडन का कोई साक्ष्य पेश न करने के कारण उत्पन्न होती है जो कि वादियों द्वारा पेश किया जाना था । यदि उपर्युक्त प्रदर्शों से उत्पन्न उपर्युक्त प्रकटन अंतिमता उत्पन्न करता है तब प्रतिवादियों की यह मांग है कि वाद भूमि के संबंध में तारीख 13 जून, 1985 को बंधक का नामांतरण जिसकी सं. 7468 है, वादियों के हक़ में मोचन के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न नहीं करता और न ही प्रतिवादियों/प्रतिदावा-कर्ताओं के विद्वान् काउंसेल यह दलील देने में समर्थ हुए हैं कि उपर्युक्त मांग उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले जाने के कारण मिथ्या बन जाती है, (क) यदि वाद संपत्ति भोगाधीन बंधक भी हो तब भी बंधक वाद-संपत्ति से भोगाधिकार मोचन के लिए वादियों का वाद वर्जित है (ख) अथवा बंधकदार मोचन की एक विधिमान्य डिक्री बनाने के लिए परिसीमा की कानूनी विहित अवधि के पर्यवसान के साथ अपनी लड़ाई में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं और तत्पश्चात् मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री को बनाने के लिए उनकी मांग ने विधिमान्यता प्राप्त कर ली है, (ग) इसके बावजूद कि प्रतिवादी भोगाधिकार बंधक वाद संपत्ति से समुचित फायदा पा रहे हैं, स्पष्ट साक्ष्य का अभिवर्तन अनिवार्य रूप से अपेक्षित है और इसलिए बंधक धन पूर्ण रूप से चुकता हो गया है तथापि, चूंकि उपर्युक्त युक्तियुक्त चीजें उत्पन्न हुई हैं जो कि 30 वर्षों के भीतर प्रभावी हुई हैं इसलिए वादी/बंधककर्ता वाद संपत्ति के मोचन के लिए कोई वाद संस्थित नहीं कर पाए हैं (घ) तथापि, चूंकि उपर्युक्त साक्ष्य पूर्ण रूप से दोषपूर्ण है और इसकी सहवर्ती है और ऐसा होने के कारण मोचन के विरुद्ध कोई बाधा नहीं है (ङ) वादियों/बंधककर्ताओं ने अपनी रजामंदी बंधक ऋणों का संदाय करने के लिए जाहिर की है इसलिए वादी वाद संपत्ति के बंधक के मोचन के लिए सक्षम हैं और प्रतिवादी/प्रतिदावाकर्ता यह दलील देने योग्य नहीं हैं कि वे भोगाधिकार के साथ बंधक वाद संपत्ति के मुकाबले मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री के अनुरोध के लिए कोई अधिकार रखते हैं । इसके अतिरिक्त तारीख 13 जून, 1985 को नामांतरण सं. 7468 किए जाने मात्र से जबकि यह बहुत पूर्व किया

गया था और वाद संपत्ति भी पहले से बंधक थी, बंधकदारों/प्रतिदावाकर्ताओं/प्रतिवादियों में कोई अजेय अधिकार निहित नहीं हो जाता, (i) चाहे वह मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री को बनाने पर बल देते हों अथवा वादियों/बंधककर्ताओ को मोचन के लिए किसी डिक्री के दावे से विवर्जित करते हों, (ii) स्पष्टतया जब उपर्युक्त नामांतरण प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पूर्व-हिताधिकारी कुंदन की उपस्थिति में अभिलिखित किया गया था जो बाद में उसके जीवन काल में विफल हो गया था इसलिए यह उसकी चुनौती पर प्रभाव डालता है, (iii) इसके पश्चात् सभी हिताधिकारी उसे आक्षेपित करने के लिए विवर्जित हैं । अन्यथा भी उपर्युक्त नामांतरण वादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा प्रतिवादियों के हिताधिकारी के मुकाबले वाद भूमि के पूर्वतर बंधक की पुष्टि के लिए एक प्रशासकीय कार्य मात्र प्रतीत होता है और इसलिए इससे पूर्व परिणाम प्रभावित नहीं होते हैं । वाद संपत्ति के एक भाग का तारीख 30 मई, 1984 को अभिलिखित नामांतरण सं. 7468 के अधीन मोचन हो चुका था और इसके साथ ही साथ प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/ण में उल्लिखित नामांतरण है (i) प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पूर्व-हिताधिकारी कुंदन ने अपनी उपस्थिति में संबंधित प्राधिकारी के समक्ष नामांतरण कराया था, (ii) और चूंकि उसने अपने जीवनकाल के दौरान इसका लोप करा दिया था इसलिए इसे आक्षेपित किया गया था और इस कारण से उसके पूर्व-हिताधिकारी इस संबंध में कोई आक्षेप करने के लिए विबंधित भी हो गए थे, (iii) उल्लेखनीय रूप से जब उपर्युक्त नामांतरण बंधक विमोचन अधिनियम में उल्लिखित उपबंधों के अधीन विधिमान्य रूप से किया गया था और इसके अतिरिक्त राजस्व प्रविष्टियों में सुधार भी कर दिया गया था जो सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी द्वारा किए गए आदेश के अनुक्रम में किया गया था इसलिए अपेक्षित सुधारों ने भी विधिमान्यता प्राप्त कर ली थी । उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर के साक्ष्य के समुचित और सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने उक्त निष्कर्ष निकालते हुए सुसंगत सामग्री को विचार में लिया है । परिणामत: इस अपील में अवधारण के लिए विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की नियमित द्‌वितीय अपील सं. 476.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री वाई. पी. सूद

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. एस. चौहान

न्यायमूर्ति सुरेश्वर ठाकुर – वर्तमान अपील दोनों विद्‌वान् निचले न्यायालयों द्‌वारा अभिलिखित एक जैसे उन निर्णयों के विरुद्ध फाइल की गई है जिनके द्‌वारा वाद संपत्ति के मोचन के लिए वादी का वाद डिक्री करते हुए प्रतिवादियों के प्रति-दावे को खारिज किया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वादीगण वादपत्र में यथा उल्लिखित वाद भूमि के स्वामी और काबिज हैं । तारीख 13 जून, 1985 को वादीगण और अन्य सह-स्वामियों अर्थात् स्वर्गीय श्रीमती सुरमी और स्वर्गीय श्री रामसा ने उपर्युक्त भूमि प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पिता कुंदन सिंह और प्रतिवादी सं. 1 के पिता झीनू के हक में सहायक कलक्टर द्‌वितीय श्रेणी, कुपवी के समक्ष बंधक की थी । प्रतिवादीगण वाद भूमि पर खेती कर रहे हैं और 2,000/- रुपए की धनराशि पर किराए के बदले में उक्त भूमि के उत्पादों और फसलों का उपभोग कर रहे हैं । श्रीमती सुरमी और श्रीमती रामसा जिनकी संतान रहित मृत्यु हो गई थी, की मृत्यु के पश्चात् वादीगण ने खसरा सं. 3701 रकबा 02.17 बीघा का मोचन करा लिया और इस संबंध में तारीख 27 जनवरी, 1987 को मामला सं. 12-×III/85 में सहायक कलक्टर द्‌वितीय श्रेणी, कुपवी द्‌वारा आदेश पारित किया गया था और इस आशय का नामांतरण सं. 8549 भी कर दिया गया था । वाद भूमि अभी भी बंधक के अधीन है और प्रतिवादियों के कब्जे में है । अब वादीगण उक्त संपत्ति का मोचन कराना चाहते हैं और 2,000/- रुपए की बंधक धनराशि का संदाय करने के लिए तैयार हैं । वादी ने नवंबर, 2011 के द्‌वितीय सप्ताह में प्रतिवादियों से बंधक धन स्वीकार करने और भूमि का कब्जा परिदत्त

करने के लिए अनुरोध किया था और तारीख 5 दिसंबर, 2011 को एक विधिक सूचना भी जारी की थी किंतु प्रतिवादियों द्वारा उसके सदभाविक अनुरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । तथ्यतः प्रतिवादी वादी की मूल्यवान भूमि को हड़पना चाहते हैं । चूंकि ऐसी स्थिति है इसलिए वादियों के पास वर्तमान वाद फाइल करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचा है ।

3. प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया जिसमें उन्होंने सुनवाई के अधिकार, विबंध, और पक्षकारों के असंयोजन और कुसंयोजन, वाद हेतुक, मूल्यांकन तथा गुण-दोष के आधार पर परिसीमा इत्यादि के संबंध में आरंभिक आक्षेप करते हुए यह निवेदन किया कि वादीगण कभी भी वाद भूमि पर काबिज नहीं रहे हैं और न ही उन्होंने किसी भी रीति में इस भूमि पर खेती की है । तथ्यतः वाद भूमि बहुत पहले वर्ष 1900 ए. डी. में प्रतिवादियों के पूर्वजों को बंधक की गई थी और इस भूमि का यथा विहित कानूनी अवधि के भीतर मोचन नहीं कराया गया था । अतः अब प्रतिवादी अत्यधिक समय बीत जाने के कारण इसके स्वामी बन गए हैं । इसके अतिरिक्त बंधक के समय वाद भूमि 'बंजर कदीम' के रूप में वर्णित की गई थी और यह उबड़-खाबड़ भूमि थी और खेती करने योग्य नहीं थी । इस भूमि को प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारियों द्वारा अत्यधिक धनराशि खर्च करके विकसित किया गया था । इस बात से स्पष्ट रूप से इनकार किया गया है कि बंधक तारीख 13 जून, 1985 को हुआ था और इस संबंध में सहायक कलक्टर, द्वितीय श्रेणी द्वारा आदेश पारित किया गया था और नामांतरण के बारे में यह कहा गया है कि यह अकृत और शून्य है । इसके अतिरिक्त वाद संपत्ति के भाग के बंधक के तथ्य से भी इनकार किया गया है और यह कहा गया है कि ऐसा नहीं किया गया था । इसके अतिरिक्त वादियों द्वारा इसके प्रतिकूल कथन किया गया है और एक स्थान पर उन्होंने यह कहा है कि बंधक धन सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी के समक्ष मोचन की कार्यवाहियों के दौरान संदत्त किया गया था और अब

वे पुन: संदाय करने के लिए भी तैयार हैं । यह प्रकथन किया गया है कि वादियों को वाद संपत्ति का मोचन कराने का कोई अधिकार नहीं है ।

4. वादियों ने प्रतिवादियों के लिखित कथन के जवाब में प्रत्युत्तर फाइल किया जिसमें उन्होंने लिखित कथन में किए कथनों से इनकार किया और वाद में स्वयं द्वारा किए गए प्रकथनों की पुन: पुष्टि करते हुए उन्हें दोहराया ।

5. प्रतिवादियों ने यह अभिकथित करते हुए प्रतिदावा फाइल किया कि अब यह वाद संपत्ति खाता/खतौनी सं. 109/222 और 223, खसरा सं. 613, 615, 616, 618, 620, 794, 800, 807 और 809 तथा खाता/खतौनी सं. 111 मिनजुमला/227, खसरा सं. 944, 947 से 949 चक हीरा, परगना छेहता, तहसील चौपल जिला शिमला हिमाचल प्रदेश में स्थित है और इस बारे में यह समान तथ्य अभिकथित किए गए हैं कि भूमि बहुत पहले 1900 ए. डी. में बंधक की गई थी और न तो वादियों द्वारा और न ही उनके पूर्व-हिताधिकारियों द्वारा संपत्ति का कानूनी अवधि के भीतर मोचन कराया गया । उनके पूर्वजों द्वारा वाद भूमि को विकसित किया गया था और उसमें वृहत्त धनराशि खर्च की गई थी । यह कहा गया है कि खाता साबिक सं. 105/127 और खाता जदीद सं. 109, 1986/87, किता 5, क्षेत्रफल 12.17 बीघा मौजा हीरा परगना छेहता का 1,000/- रुपए के लिए भूमि के मोचन के संबंध में सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी द्वारा तारीख 30 मई, 1984 को किया गया नामांतरण सं. 7466 अकृत और शून्य है । इसके अतिरिक्त वाद संपत्ति के बंधक के संबंध में तारीख 13 जून, 1985 को किया गया नामांतरण सं. 7468 भी प्रतिदावों की पृष्ठभूमि में गलत प्रविष्टि होना बताया गया है । यह कहा गया है कि वादी सं. 5 ने सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी के समक्ष तारीख 20 सितंबर, 1985 को खसरा सं. 3701 के संबंध में हिमाचल प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 37 के अधीन राजस्व प्रविष्टियों में सुधार करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें उसने यह अभिकथित किया था कि उपर्युक्त खसरा संख्या का पहले ही अर्थात् 12-13 वर्ष पहले मोचन किया जा चुका है

और उसने बंधक धन का संदाय कर दिया है । मामला सं.-12-×III/85 में तारीख 27 जनवरी, 1987 के आदेश द्वारा उपर्युक्त खसरा संख्या के संबंध में मोचन-आदेश किया गया था और इस संबंध में सहायक कलक्टर, द्वितीय श्रेणी द्वारा तारीख 9 नवंबर, 1987 को पहले ही नामांतरण सं. 7549 का आदेश किया जा चुका है और तथ्यत: उसे इसका मोचन कराने का कोई अधिकार नहीं था । प्रतिदावा करने वाले प्रतिवादियों का पांच खसरा संख्याओं पर शांतिपूर्ण और सतत् कब्जा विद्यमान है ।

6. वादी/गैर-प्रतिदावाकर्ताओं ने प्रतिदावे के विरोध में लिखित कथन फाइल किया था जिसमें उन्होंने गुण-दोष के आधार पर सुने जाने के अधिकार, विबंध इत्यादि के संबंध में आरंभिक आक्षेप फाइल किए और प्रतिवादी/प्रतिदावाकर्ताओं के दावे से इनकार किया और साथ ही साथ वादपत्र में किए गए प्रकथनों को दोहराया ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के परस्पर विरोधी अभिवचनों के आधार पर अभिवचनों को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या वादी और अन्य सह-स्वामियों ने तारीख 13 जून, 1985 को वाद भूमि-I अर्थात् चक हीरा, परगना छेहता तहसील चौपल जिला शिमला स्थित खसरा सं. 3760, 3762, 3863 और 3864 रकबा 10 बीघा का बंधक किया था ? यदि नहीं तो भूमि कब बंधक की गई थी और इसका प्रभाव क्या है ? ओ. पी. पी.

(ii) क्या वादियों को वाद भूमि के बंधक का मोचन कराने का अधिकार है ? यदि हां तो किस रीति में ? ओ. पी. पी.

(iii) क्या वादी स्वयं अपने कार्यों, आचरण और मौन सहमति द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने से विबद्ध हैं ? ओ. पी. डी.

(iv) क्या वाद का न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है ? ओ. पी. डी.

(v) क्या वाद परिसीमा से वर्जित है ? ओ. पी. डी.

(vi) क्या वाद भूमि-II का जिसमें खसरा सं. 3701 सम्मिलित है, विधिक रूप से मोचन नहीं कराया गया है ? ओ. पी. सी. सी.

(vii) क्या प्रतिदावा-कर्ता यथा अनुरोध की गई घोषणा की डिक्री पाने के हकदार हैं ? ओ. पी. सी. सी.

(viii) क्या प्रतिदावा-कर्ता यथा अनुरोध किए गए वाद भूमि-II के कब्जे की पुष्टि और कब्जे की वापिसी के लिए हकदार हैं ? ओ. पी. सी. सी.

(ix) क्या प्रतिदावा-कर्ता स्वयं अपने कार्यों, आचरण और मौन सहमति के कारण वर्तमान प्रतिदावे को करने के लिए विबद्ध हैं ? ओ. पी. एन. सी. सी.

(x) क्या प्रतिदावा-कर्ता न्यायालय में सदभावना से नहीं आए हैं ? ओ. पी. एन. सी. सी.

(xi) अनुतोष ।

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपने समक्ष पेश किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वादी/हमारे समक्ष के प्रत्यर्थियों का दावा डिक्री कर दिया, जबकि न्यायालय ने प्रतिवादियों/प्रतिदावा-कर्ताओं का दावा खारिज कर दिया । प्रतिवादियों/हमारे समक्ष के अपीलार्थियों ने उक्त डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की, तथापि, प्रथम अपील न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की पुष्टि की ।

9. इसके पश्चात् प्रतिवादियों/हमारे समक्ष के अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की जिसमें उन्होंने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में अभिलिखित निष्कर्षों को आक्षेपित किया है ।

10. प्रदर्श डी. डब्ल्'यू.-6/ए से सत्यता की उपधारणा संबद्ध की गई है और यह प्रदर्श वाद भूमि से संबंधित जमाबंदी की एक प्रति है जो वर्ष 1939-40 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-6/बी. वाद भूमि से

संबंधित जमाबंदी की प्रति है जो वर्ष 1944-45 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/एफ वाद भूमि से संबंधित जमाबंदी की प्रति है जो वर्ष 1951-52 से संबंधित है और प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/जी., प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/एच तथा प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/के वाद भूमि से संबंधित जमाबंदियों की प्रतियां हैं और क्रमश: वर्ष 1986-87, 1991-92 और 1996-97 से संबंधित हैं । उपर्युक्त सभी प्रदर्शों से प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारियों का संबंध परिलक्षित होता है और उनके नाम कब्जे के स्तम्भ में अभिलिखित हैं जो कि वाद भूमि के बंधकदारों के रूप में काबिज़ हैं । उपर्युक्त सत्यता की उपधारणा निश्चायक रूप से और विशेष रूप से इस संबंध में खंडन का कोई साक्ष्य पेश न करने के कारण उत्पन्न होती है जो कि वादियों द्वारा पेश किया जाना था । यदि उपर्युक्त प्रदर्शों से उत्पन्न उपर्युक्त प्रकटन अंतिमता उत्पन्न करता है तब प्रतिवादियों की यह मांग है कि वाद भूमि के संबंध में तारीख 13 जून, 1985 को बंधक का नामांतरण जिसकी सं. 7468 है, वादियों के हक़ में मोचन के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न नहीं करता और न ही प्रतिवादियों/प्रतिदावा-कर्ताओं के विद्वान् काउंसेल यह दलील देने में समर्थ हुए हैं कि उपर्युक्त मांग उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले जाने के कारण मिथ्या बन जाती है, (क) यदि वाद संपत्ति भोगाधीन बंधक भी हो तब भी बंधक वाद-संपत्ति से भोगाधिकार मोचन के लिए वादियों का वाद वर्जित है (ख) अथवा बंधकदार मोचन की एक विधिमान्य डिक्री बनाने के लिए परिसीमा की कानूनी विहित अवधि के पर्यवसान के साथ अपनी लड़ाई में पूर्ण रूप से सफल रहे हैं और तत्पश्चात् मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री को बनाने के लिए उनकी मांग ने विधिमान्यता प्राप्त कर ली है, (ग) इसके बावजूद कि प्रतिवादी भोगाधिकार बंधक वाद संपत्ति से समुचित फायदा पा रहे हैं, स्पष्ट साक्ष्य का अभिवर्तन अनिवार्य रूप से अपेक्षित है और इसलिए बंधक धन पूर्ण रूप से चुकता हो गया है तथापि, चूंकि उपर्युक्त युक्तियुक्त चीजें उत्पन्न हुई हैं जो कि 30 वर्षों के भीतर प्रभावी हुई हैं इसलिए वादी/बंधककर्ता वाद संपत्ति के मोचन के लिए कोई वाद संस्थित नहीं कर पाए हैं (घ) तथापि, चूंकि उपर्युक्त साक्ष्य पूर्ण रूप से दोषपूर्ण है और इसकी सहवर्ती है और ऐसा होने के कारण मोचन के विरुद्ध कोई बाधा नहीं है (ङ) वादियों/बंधककर्ताओं ने अपनी रजामंदी

बंधक ऋणों का संदाय करने के लिए जाहिर की है इसलिए वादी वाद संपत्ति के बंधक के मोचन के लिए सक्षम हैं और प्रतिवादी/प्रतिदावाकर्ता यह दलील देने योग्य नहीं हैं कि वे भोगाधिकार के साथ बंधक वाद संपत्ति के मुकाबले मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री के अनुरोध के लिए कोई अधिकार रखते हैं ।

11. इसके अतिरिक्त तारीख 13 जून, 1985 को नामांतरण सं. 7468 किए जाने मात्र से जबकि यह बहुत पूर्व किया गया था और वाद संपत्ति भी पहले से बंधक थी, बंधकदारों/प्रतिदावाकर्ताओं/प्रतिवादियों में कोई अजेय अधिकार निहित नहीं हो जाता, (i) चाहे वह मोचन-निषेध के लिए किसी डिक्री को बनाने पर बल देते हों अथवा वादियों/बंधककर्ताओ को मोचन के लिए किसी डिक्री के दावे से विवर्जित करते हों, (ii) स्पष्टतया जब उपर्युक्त नामांतरण प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पूर्व-हिताधिकारी कुंदन की उपस्थिति में अभिलिखित किया गया था जो बाद में उसके जीवन काल में विफल हो गया था इसलिए यह उसकी चुनौती पर प्रभाव डालता है, (iii) इसके पश्चात् सभी हिताधिकारी उसे आक्षेपित करने के लिए विवर्जित हैं । अन्यथा भी उपर्युक्त नामांतरण वादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा प्रतिवादियों के हिताधिकारी के मुकाबले वाद भूमि के पूर्वतर बंधक की पुष्टि के लिए एक प्रशासकीय कार्य मात्र प्रतीत होता है और इसलिए इससे पूर्व परिणाम प्रभावित नहीं होते हैं ।

12. वाद संपत्ति के एक भाग का तारीख 30 मई, 1984 को अभिलिखित नामांतरण सं. 7468 के अधीन मोचन हो चुका था और इसके साथ ही साथ प्रदर्श डी. डब्ल्यू.-1/ण में उल्लिखित नामांतरण है (i) प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पूर्व-हिताधिकारी कुंदन ने अपनी उपस्थिति में संबंधित प्राधिकारी के समक्ष नामांतरण कराया था, (ii) और चूंकि उसने अपने जीवनकाल के दौरान इसका लोप करा दिया था इसलिए इसे आक्षेपित किया गया था और इस कारण से उसके पूर्व-हिताधिकारी इस संबंध में कोई आक्षेप करने के लिए विबंधित भी हो गए थे, (iii) उल्लेखनीय रूप से जब उपर्युक्त नामांतरण बंधक विमोचन अधिनियम में उल्लिखित उपबंधों के अधीन विधिमान्य रूप से किया गया था और

इसके अतिरिक्त राजस्व प्रविष्टियों में सुधार भी कर दिया गया था जो सहायक कलक्टर द्वितीय श्रेणी, कुपवी द्वारा किए गए आदेश के अनुक्रम में किया गया था इसलिए अपेक्षित सुधारों ने भी विधिमान्यता प्राप्त कर ली थी ।

13. उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभिलेख पर के साक्ष्य के समुचित और सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने उक्त निष्कर्ष निकालते हुए सुसंगत सामग्री को विचार में लिया है । परिणामत: इस अपील में अवधारण के लिए विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं होता है ।

14. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान अपील में कोई बल नहीं है और तद्नुसार यह खारिज की जाती है । इसके साथ ही साथ इस न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किए गए निर्णयों और डिक्रियों की पुष्टि करते हुए उनको बहाल रखा जाता है । तद्नुसार डिक्री-पत्र तैयार किया जाए । सभी लंबित आवेदनों का भी निपटान किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

15. निचले न्यायालयों का अभिलेख वापस भेजा जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

<u>संसद् के अधिनियम</u>

पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960

(1960 का अधिनियम संख्यांक 59)

[26 दिसम्बर, 1960]

पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने के निवारणार्थ और उस प्रयोजन के लिए पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण संबंधी विधि का संशोधन करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के ग्यारहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :-

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1960 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे, और विभिन्न राज्यों के लिए तथा इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें[1] नियत की जा

---

[1] 1 अप्रैल, 1961, पंजाब राज्य और अंदमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्यक्षेत्र के लिए देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 823, तारीख 1 अप्रैल, 1961, भारत का राजपत्र, 1961, भाग II खंड 3(ii), पृ. 806 ।

1 सितम्बर, 1961, अध्याय 1 और 2 के लिए असम, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्यों और दिल्ली, मणिपुर तथा त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2061, तारीख 25 अगस्त, 1961, भारत का राजपत्र, 1961, भाग II, खंड 3(ii), पृ. 2154 ।

2 अक्तूबर, 1961, अध्याय 1 और 2 के लिए हिमाचल प्रदेश संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2286, तारीख 15 सितम्बर, 1961, भारत का राजपत्र, भाग II, खंड 3 (ii) पृ. 2397 ।

26 जनवरी, 1962, अध्याय 1 और 2 के लिए, राजस्थान राज्य के संबंध में, देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 21, तारीख 28 दिसम्बर, 1961, भारत का राजपत्र, भाग II, खंड 3(ii), पृ. 11 ।

सकती हैं ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "पशु" से अभिप्रेत है वह जीवित प्राणी जो मनुष्य से भिन्न है ;

[1][(ख) "बोर्ड" से धारा 4 के अधीन स्थापित और धारा 5क के अधीन समय-समय पर यथापुनर्गठित बोर्ड अभिप्रेत है ;]

(ग) "बंधुआ पशु" से अभिप्रेत है कोई पशु (जो पालतू पशु न हो) जो चाहे स्थायी रूप से अथवा अस्थायी रूप से बंधुआ हालत में हो या परिरोध में हो, या जिसे बंधुआ हालत अथवा परिरोध में से उसके निकल भागने में रुकावट डालने या निकल भागने की रोकथाम करने के प्रयोजनार्थ कोई साधित्र या यंत्र लगाकर रखा गया हो, या जिसे बांधकर रखा गया हो, या जो विकलांग कर दिया गया हो या विकलांग हो गया प्रतीत होता हो ;

(घ) "पालतू पशु" से ऐसा पशु अभिप्रेत है जो सधाया हुआ है ;

---

15 जुलाई, 1963, अध्याय 4 के लिए, असम, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल राज्यों और दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में, देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 2000, तारीख 11 जुलाई, 1963, भारत का राजपत्र, भाग II, खंड 3(ii), पृ. 2242 ।

20 नवम्बर, 1963, अध्याय 3 और 4 के लिए, असम, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, केरल, मद्रास, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्यों तथा दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा संघ राज्यक्षेत्रों के संबंध में, देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 3160, तारीख 29 अक्तूबर, 1963, भारत का राजपत्र, 1961 भाग II, खंड 3(ii), पृ. 3980 ।

1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 द्वारा और अनुसूची 1 द्वारा 1 अक्तूबर, 1963 से यह अधिनियम पांडिचेरी में प्रवृत्त हुआ ।

1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा 1 जुलाई, 1965 से दादरा और नागर हवेली पर विस्तारित और प्रवृत्त किया गया ।

1963 के विनियम सं. 11 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा गोवा, दमन और दीव पर विस्तारित ।

1 मार्च, 1963 से सिक्किम राज्य में प्रवृत्त किया गया ।

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 2 द्वारा खंड (ख) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या जो मनुष्य के काम आने के लिए किसी प्रयोजन की पूर्ति के निमित्त पर्याप्त रूप से सधाया गया है या सधाया जा रहा है, या जो, भले ही वह न तो इस प्रकार सधाया गया हो और न सधाया जा रहा हो और न ही उसका इस प्रकार सधाया जाना आशयित हो, वस्तुतः पूर्णतः या अंशतः सधाया हुआ है या हो गया है ;

(ङ) "स्थानीय प्राधिकारी" से नगरपालिका समिति, जिला बोर्ड या अन्य ऐसा प्राधिकारी अभिप्रेत है, जिसमें किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र में किन्हीं मामलों का नियंत्रण और प्रशासन विधि द्‌वारा तत्समय निहित है ;

(च) "स्वामी" के अंतर्गत, जब कि उसका प्रयोग किसी पशु के प्रतिनिर्देश से किया गया हो, न केवल स्वामी किन्तु कोई ऐसा अन्य व्यक्ति भी है जिसके कब्जे में या जिसकी अभिरक्षा में वह पशु, चाहे स्वामी की सहमति से या उसके बिना, तत्समय हो ;

(छ) "फूका" या "डूम देव" के अंतर्गत दुधारू पशु की योनि में वायु या किसी अन्य पदार्थ को इस उद्‌देश्य से प्रविष्ट करने की प्रक्रिया है जिससे कि उस पशु से दूध का कोई स्राव निकाला जा सके ;

(ज) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्‌वारा विहित अभिप्रेत है ;

(झ) "मार्ग" के अंतर्गत कोई ऐसा रास्ता, सड़क, गली, चौक, आंगन, वीथि, पथ या खुला स्थान आता है, चाहे वह आम रास्ता हो या न हो, जिस तक जनता की पहुंच हो ।

3. **उन व्यक्तियों के कर्तव्य जिनके भारसाधन में पशु है** – ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसकी देख-रेख या भारसाधन में कोई पशु है, यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे पशु का कल्याण सुनिश्चित करने तथा उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने का निवारण करने के लिए सभी समुचित उपाय करें ।

अध्याय 2

[1][भारतीय पशु-कल्याण बोर्ड]

4. **कल्याण बोर्ड की स्थापना** – (1) साधारणतया पशु-कल्याण के

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 3 द्‌वारा "पशु-कल्याण बोर्ड" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

संवर्धन के लिए तथा विशिष्टतया अनावश्यक पीड़ा या यातना से पशुओं की संरक्षा करने के प्रयोजनार्थ केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् यथाशक्यशीघ्र, एक बोर्ड की स्थापना करेगी, जो [1][भारतीय पशु-कल्याण बोर्ड] कहलाएगा ।

(2) बोर्ड शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला एक निगमित निकाय होगा और उसे, इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन करने की शक्ति होगी और जो अपने नाम से वाद ला सकेगा तथा उस पर वाद लाया जा सकेगा ।

(5) **बोर्ड का गठन** – (1) बोर्ड में निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, अर्थात् :-

(क) भारत सरकार का वन महानिरीक्षक, पदेन ;

(ख) भारत सरकार का पशुपालन आयुक्त, पदेन ;

[2][(खक) दो व्यक्ति, जो क्रमशः गृह और शिक्षा से संबंधित केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों का प्रतिनिधित्व करेंगे, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ;

(खख) एक व्यक्ति, जो भारतीय वन्य प्राणी, बोर्ड का प्रतिनिधित्व करेगा, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा ;

(खग) तीन व्यक्ति, जो केन्द्रीय सरकार की राय में, पशु-कल्याण कार्य में सक्रिय रूप से लगे हैं या लगे रहे हैं और सुविख्यात लोकोपकारक हैं, केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;]

(ग) एक व्यक्ति, जो पशु चिकित्सा व्यवसायियों के किसी ऐसे संगम का प्रतिनिधित्व करेगा, जिसका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए और वह व्यक्ति विहित रीति से उस संगम द्वारा निर्वाचित किया जाएगा ।

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 4 द्वारा "पशु-कल्याण बोर्ड" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा अंतःस्थापित ।

(घ) दो व्यक्ति, जो आधुनिक देशी चिकित्सा प्रणाली के व्यवसायियों का प्रतिनिधित्व करेंगे, केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;

[1][(ङ) एक-एक व्यक्ति, जो ऐसे दो नगर निगमों में से, जिनका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए ; प्रत्येक का प्रतिनिधिनित्व करेगा, विहित रीति से उक्त निगमों में से प्रत्येक के द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे ;]

(च) एक-एक व्यक्ति, जो उन तीनों संगठनों में से प्रत्येक का, जो पशु-कल्याण कार्यों में सक्रिय रूप से रुचि रखने वाले हों और जिनका, केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए, प्रतिनिधित्व करेगा ; और ये व्यक्ति विहित रीति से उक्त प्रत्येक संगठन द्वारा चुने जाएंगे ;

(छ) एक-एक व्यक्ति, जो उन तीनों सोसाइटियों में से प्रत्येक का, जो पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करने के कार्य से संबंधित हों और जिनका केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व होना चाहिए ; प्रतिनिधित्व करेगा ; और ये व्यक्ति विहित रीति से चुने जाएंगे ;

(ज) तीन व्यक्ति जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;

(झ) छह संसद् सदस्य, जिनमें से चार लोक सभा द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे और दो राज्य सभा द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे ।

(2) उपधारा (1) के खंड (क) [2][या खंड (ख) या खंड (खक)] में निर्दिष्ट व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति बोर्ड की किसी भी बैठक में हाजिर होने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिनियुक्त कर सकेगा ।

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा खंड (ङ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा "खंड (ख)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][(3) केन्द्रीय सरकार बोर्ड के सदस्यों में से एक सदस्य को बोर्ड का अध्यक्ष और बोर्ड के एक अन्य सदस्य को बोर्ड का उपाध्यक्ष नामनिर्दिष्ट करेगी ।]

[2][**5क. बोर्ड का पुनर्गठन** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस दृष्टि से कि बोर्ड का अध्यक्ष और अन्य सदस्य एक ही तारीख तक पद धारण करें और उनकी पदावधियां उसी तारीख को समाप्त हों, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बोर्ड का पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण (संशोधन) अधिनियम, 1982 के प्रवृत्त होने के पश्चात्, यथाशक्यशीघ्र, पुनर्गठन कर सकेगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन पुनर्गठित बोर्ड, उपधारा (1) के अधीन अपने पुनर्गठन की तारीख से प्रत्येक तीसरे वर्ष के अवसान पर समय-समय पर पुनर्गठित किया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) के अधीन पुनर्गठित बोर्ड के सदस्यों में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित किए जाएंगे जो उस तारीख के ठीक पहले, जिसको ऐसा पुनर्गठन प्रभावशील होना है, बोर्ड के सदस्य हैं, किन्तु ऐसे व्यक्ति उस अवधि के, अनवसित भाग के लिए ही जिसके लिए वे, यदि ऐसा पुनर्गठन न किया गया होता तो, पद धारण करते, पद धारण करेंगे और उनके बोर्ड के सदस्य न रह जाने के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली रिक्तियां इस प्रकार पुनर्गठित बोर्ड की अवशिष्ट कालावधि के लिए आकस्मिक रिक्तियों के रूप में भरी जाएंगी :

परन्तु इस उपधारा की कोई भी बात किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में लागू नहीं होगी जो पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण (संशोधन) अधिनियम, 1982 की धारा 5 के खंड (क) के उपखंड (ii) द्वारा धारा 5 की उपधारा (1) में किए गए संशोधन के फलस्वरूप बोर्ड का सदस्य नहीं रह जाता है ।]

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 5 द्वारा उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 6 द्वारा अंत:स्थापित ।

[1][6. **बोर्ड के सदस्यों का कार्यकाल और उनकी सेवा की शर्तें** – (1) वह अवधि जिसके लिए बोर्ड का धारा 5क के अधीन पुनर्गठन किया जा सकेगा, पुनर्गठन की तारीख से तीन वर्ष होगी और इस प्रकार पुनर्गठित बोर्ड का अध्यक्ष और अन्य सदस्य उस अवधि के अवसान तक पद धारण करेंगे जिसके लिए बोर्ड का इस प्रकार पुनर्गठन किया गया है ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) पदेन सदस्य की पदावधि तब तक बनी रहेगी जब तक वह उस पद को धारण किए रहता है जिसके आधार पर वह ऐसा सदस्य है ;

(ख) व्यक्तियों के किसी निकाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए धारा 5 के खंड (ग), खंड (ङ), खंड (च), खंड (छ), खंड (ज) या खंड (झ) के अधीन निर्वाचित या चुने गए सदस्य की पदावधि जैसे ही वह सदस्य उस निकाय का, जिसने उसे निर्वाचित किया था या जिसकी बाबत वह चुना गया था, सदस्य नहीं रह जाता है, समाप्त हो जाएगी ;

(ग) किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए नियुक्त, नामनिर्दिष्ट, निर्वाचित या चुने गए सदस्य की पदावधि उस सदस्य की अवशिष्ट पदावधि के लिए होगी जिसके स्थान पर वह नियुक्त, नामनिर्दिष्ट या निर्वाचित किया गया है या चुना गया है ;

(घ) केन्द्रीय सरकार किसी सदस्य को, उसके प्रस्थापित हटाए जाने के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का उसे उचित अवसर देने के पश्चात् उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, किसी भी समय हटा सकेगी और ऐसे हटाए जाने से हुई कोई रिक्ति खंड (ग) के प्रयोजन के लिए आकस्मिक रिक्ति मानी जाएगी ।

(3) बोर्ड के सदस्य ऐसे भत्ते, यदि कोई हों, पाएंगे जिनके लिए बोर्ड केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के अधीन रहते हुए, इस निमित्त बनाए गए विनियमों द्वारा, उपबंध करें ।

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 7 द्वारा धारा 6 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(4) बोर्ड द्वारा किए गए किसी भी कार्य या कार्यवाही को केवल इसी कारण प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि बोर्ड में कोई रिक्ति थी अथवा उसके गठन में कोई त्रुटि थी तथा विशिष्टतया और पूर्वगामी भाग की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उस अवधि की समाप्ति, जिसके लिए बोर्ड का धारा 5क के अधीन पुनर्गठन किया गया है और उस धारा के अधीन उसके आगे पुनर्गठन के बीच की कालावधि के दौरान, बोर्ड के पदेन सदस्य बोर्ड की सभी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेंगे ।]

7. **बोर्ड के सचिव तथा अन्य कर्मचारी** – (1) केन्द्रीय सरकार [1]*** बोर्ड का सचिव नियुक्त करेगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, बोर्ड उतने अन्य अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त कर सकेगा जितने उसकी शक्तियों का प्रयोग और उसके कृत्यों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक हों और ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों को, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से, अपने द्वारा बनाए गए विनियमों द्वारा, अवधारित कर सकेगा ।

8. **बोर्ड की निधियां** – बोर्ड की निधियों में वे अनुदान जो सरकार द्वारा उसे समय-समय पर दिए गए हों और किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा उसे दिए गए अंशदान, संदान, अभिदान, वसीयत-संपत्ति, दान और इसी प्रकार की प्राप्तियां सम्मिलित होंगी ।

9. **बोर्ड के कृत्य** – बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य होंगे –

(क) पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करने के लिए भारत में प्रवृत्त विधि का बराबर अध्ययन करते रहना और ऐसी किसी विधि में समय-समय पर किए जाने वाले संशोधनों के संबंध में सरकार को सलाह देना ;

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 8 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

(ख) इस अधिनियम के अधीन नियम बनाने के संबंध में केन्द्रीय सरकार को इस दृष्टि से सलाह देना कि पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना का साधारणतया और, विशिष्टतया तब जब वे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाए जा रहे हों या जब उनका उपयोग करतब दिखाने वाले पशुओं के रूप में किया जा रहा हो या जब वे बंधुआ हालत में या परिरोध में रखे गए हों, निवारण किया जा सके ;

(ग) सरकार को या किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति को यह सलाह देना कि यानों के डिजाइनों का सुधार इस प्रकार किया जाए जिससे कि भार ढोने वाले पशुओं पर बोझ कम किया जा सके ;

(घ) सायबानों, चरहियों और वैसी ही चीजों के निर्माण को प्रोत्साहन देकर अथवा उनकी व्यवस्था करके तथा पशुओं के लिए पशु चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करके [1][पशुओं की बेहतरी] के लिए ऐसे सभी उपाय करना जिन्हें बोर्ड ठीक समझे ;

(ङ) वधशालाओं के डिजाइन तैयार करने अथवा उन्हें बनाए रखने अथवा पशुओं के इस प्रकार वध के संबंध में, कि पशुओं के प्रति वध-पूर्व प्रक्रमों में अनावश्यक शारीरिक या मानसिक पीड़ा या यातना को, जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके और पशुओं का, जहां कहीं आवश्यक हो, यथासंभव दयालु ढंग से वध किया जा सके, सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को सलाह देना ;

(च) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे पशुओं को, जिनकी जरूरत नहीं रह गई है, या तो तत्क्षण, या पीड़ा अथवा यातना के प्रति उन्हें संज्ञाहीन बनाकर, स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा, जब कभी वैसा करना आवश्यक हो, नष्ट कर दिया जाए, सभी ऐसे उपाय करना जिन्हें बोर्ड उचित समझे ;

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(छ) [1][पिंजरापोलों, बचावगृहों, पशुआश्रयों, पशुवनों और वैसे ही अन्य स्थानों के, जहां पशु और पक्षी बूढ़े और बेकार हो जाने पर, या जब उन्हें संरक्षण की आवश्यकता हो, तब शरण पा सकें, निर्माण या स्थापना को] वित्तीय सहायता प्रदान करके अथवा अन्यथा, प्रोत्साहन देना ;

(ज) पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना के निवारण के प्रयोजनार्थ अथवा पशु-पक्षियों की संरक्षा के लिए स्थापित संगमों या निकायों के साथ सहयोग करना और उनके कार्य का समन्वय करना ;

(झ) किसी स्थानीय क्षेत्र में कार्य कर रहे पशु कल्याण संगठनों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देना, अथवा किसी स्थानीय क्षेत्र में किन्हीं ऐसे पशु कल्याण संगठनों के निर्माण को प्रोत्साहन देना जो बोर्ड के सामान्य अधीक्षण और मार्गदर्शन में कार्य करेंगे ;

(ञ) सरकार को चिकित्सीय देख-रेख और परिचर्या की उन बातों के बारे में सलाह देना जिनकी व्यवस्था पशु अस्पतालों में की जाए और जब कभी बोर्ड पशु अस्पतालों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देना आवश्यक समझे तब ऐसी सहायता देना ;

(ट) पशुओं के प्रति दयालुतापूर्ण बर्ताव करने की शिक्षा देना और पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचाने के विरुद्ध, तथा व्याख्यानों, पुस्तकों, पोस्टरों, चलचित्र प्रदर्शनों तथा अन्य वैसी ही बातों से पशु-कल्याण कार्यों को बढ़ावा देने के लिए, लोकमत तैयार करना ;

(ठ) पशु-कल्याण कार्यों अथवा पशुओं के प्रति अनावश्यक पीड़ा या यातना के निवारण से संबंधित बातों के बारे में सरकार को सलाह देना ।

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

10. **विनियम बनाने की बोर्ड की शक्ति** – बोर्ड अपने कार्यों को संपन्न करने तथा अपने कृत्यों को क्रियान्वित करने के लिए, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन के अधीन रहते हुए, ऐसे विनियम बना सकेगा जैसे वह ठीक समझे ।

अध्याय 3

साधारण पशुओं के प्रति क्रूरता

11. **पशुओं के प्रति क्रूरता का व्यवहार** – (1) यदि कोई व्यक्ति –

(क) किसी पशु को पीटेगा, ठोकर मारेगा, उस पर अत्यधिक सवारी करेगा, उस पर सवारी करके उसे अत्यधिक हांकेगा, उस पर अत्यधिक बोझ लादेगा, उसे यंत्रणा देगा, या अन्यथा उसके साथ ऐसे बर्ताव करेगा या करवाएगा जिससे उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना होती है, या स्वामी होते हुए किसी पशु के प्रति इस प्रकार का बर्ताव करने देगा ; अथवा

(ख) [1][किसी कार्य या श्रम में या किसी अन्य प्रयोजन के लिए किसी ऐसे पशु को लगाएगा जो अपनी आयु या किसी रोग,] अंग-शैथिल्य, घाव, फोड़े के कारण अथवा किसी अन्य कारण से इस प्रकार लगाए जाने के अनुपयुक्त है, या स्वामी होते हुए ऐसे किसी अनुपयुक्त पशु को इस प्रकार लगाए जाने देगा ; अथवा

(ग) [1][किसी पशु को] जानबूझकर तथा अनुचित रूप से कोई क्षतिकारक औषधि या क्षतिकारक पदार्थ देगा या [1][किसी पशु को] जानबूझकर और अनुचित रूप से ऐसी कोई औषधि या पदार्थ, खिलवाएगा या खिलवाने का प्रयास करेगा ; अथवा

(घ) किसी पशु को किसी यान में, या यान पर, या अन्यथा ऐसी रीति से या ऐसी स्थिति में प्रवहित करेगा या ले जाएगा जिससे कि उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना पहुंचती है ; अथवा

(ङ) किसी पशु को किसी ऐसे पिंजरे या अन्य पात्र में रखेगा या परिरुद्ध करेगा, जिसकी ऊंचाई, लम्बाई और चौड़ाई इतनी पर्याप्त न हो कि पशु को उसमें हिल-डुल सकने का उचित स्थान प्राप्त हो सके ; अथवा

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(च) किसी पशु को अनुचित रूप से छोटी या अनुचित रूप से भारी किसी जंजीर या रस्सी में किसी अनुचित अवधि तक के लिए बांधकर रखेगा ; अथवा

(छ) स्वामी होते हुए, किसी ऐसे कुत्ते को, जो अभ्यासत: जंजीर में बंधा रहता है या बन्द रखा जाता है, उचित रूप से व्यायाम करने या करवाने की उपेक्षा करेगा ; अथवा

(ज) [1][किसी पशु का] स्वामी होते हुए ऐसे पशु को पर्याप्त खाना, जल या आश्रय नहीं देगा ; अथवा

(झ) उचित कारण के बिना, किसी पशु को ऐसी परिस्थिति में परित्यक्त कर देगा जिससे यह संभाव्य हो कि उसे भुखमरी या प्यास के कारण पीड़ा पहुंचे ; अथवा

(ञ) किसी ऐसे पशु को, जिसका वह स्वामी है, जानबूझकर किसी मार्ग में छोड़कर घूमने देगा जब कि वह पशु किसी सांसर्गिक या संक्रामक रोग से ग्रस्त हो, या किसी रोगग्रस्त या विकलांग पशु को, जिसका वह स्वामी है, उचित कारण के बिना, किसी मार्ग में मर जाने देगा ; अथवा

(ट) किसी ऐसे पशु को बिक्री के लिए प्रस्तुत करेगा, या बिना किसी उचित कारण के अपने कब्जे में रखेगा, जो अंगविच्छेद, भुखमरी, प्यास, अतिभरण या अन्य दुर्व्यवहार के कारण पीड़ाग्रस्त हो ; अथवा

[2][(ठ) किसी पशु का अंगविच्छेद करेगा या किसी पशु को (जिसके अन्तर्गत आवारा कुत्ते भी हैं) हृदय में स्ट्रीक्नीन-अन्तःक्षेपण की पद्धति का उपयोग करके या किसी अन्य अनावश्यक क्रूर ढंग से मार डालेगा ; अथवा]

[3][(ड) केवल मनोरंजन करने के उद्देश्य से, –

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा खण्ड (ठ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा खण्ड (ड) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(i) किसी पशु को ऐसी रीति से परिरुद्ध करेगा या कराएगा (जिसके अन्तर्गत किसी पशु का किसी व्याघ्र या अन्य पशुवन में चारे के रूप में बांधा जाना भी है) कि वह किसी अन्य पशु का शिकार बन जाए ; अथवा

(ii) किसी पशु को किसी अन्य पशु के साथ लड़ने के लिए या उसे सताने के लिए उद्दीप्त करेगा ; अथवा]

(ढ) पशुओं की लड़ाई के लिए या किसी पशु को सताने के प्रयोजनार्थ, किसी स्थान को [1]**** सुव्यवस्थित करेगा, बनाए रखेगा, उसका उपयोग करेगा, या उसके प्रबन्ध के लिए कोई कार्य करेगा या किसी स्थान को इस प्रकार उपयोग में लाने देगा या तदर्थ प्रस्ताव करेगा, या ऐसे किसी प्रयोजन के लिए रखे गए या उपयोग में लाए गए किसी स्थान में किसी अन्य व्यक्ति के प्रवेश के लिए धन प्राप्त करेगा ; अथवा

(ण) गोली चलाने या निशानेबाजी के किसी मैच या प्रतियोगिता को, जहां पशुओं को बंधुआ हालत से इसलिए छोड़ दिया जाता है कि उन पर गोली चलाई जाए या उन्हें निशाना बनाया जाए, बढ़ावा देगा या उसमें भाग लेगा,

[2][तो वह प्रथम अपराध की दशा में, जुर्माने से, जो दस रुपए से कम नहीं होगा किन्तु जो पचास रुपए तक का हो सकेगा और द्वितीय या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, जो पिछले अपराध के किए जाने के तीन वर्ष की अवधि के भीतर किया जाता है, जुर्माने से, जो पच्चीस रुपए से कम नहीं होगा किन्तु जो एक सौ रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, अथवा दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।]

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए किसी स्वामी के बारे में यह तब समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है जब वह ऐसे अपराध के निवारण के लिए समुचित देख-रेख और पर्यवेक्षण करने में

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

असफल रहा हो :

परन्तु जहां स्वामी केवल इसी कारण क्रूरता होने देने के लिए दोषसिद्ध किया जाता है कि वह ऐसी देख-रेख और पर्यवेक्षण करने में असफल रहा है वहां वह जुर्माने के विकल्प के बिना कारावास का दायी नहीं होगा ।

(3) इस धारा की कोई भी बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी –

(क) विहित रीति से ढोरों के सींग निकालना, या किसी पशु को बधिया करना या उसे दागना या उसकी नाक में रस्सी डालना ; अथवा

(ख) आवारा कुत्तों को प्राणहर कक्षों में या [1][किन्हीं अन्य ढंगों से, जो विहित किए जाएं] नष्ट करना ; अथवा

(ग) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के प्राधिकार के अधीन किसी पशु का उन्मूलन करना या उसे नष्ट करना ; अथवा

(घ) कोई विषय, जो अध्याय 4 में वर्णित है ; अथवा

(ङ) मनुष्यों के भोजन के रूप में किसी पशु को नष्ट करने या नष्ट करने की तैयारी के दौरान किसी कार्य का किया जाना या कोई कार्य-लोप, यदि ऐसे नाश या ऐसी तैयारी के समय उसे अनावश्यक पीड़ा या यातना न पहुंची हो ।

12. **फूका या डूम देव करने के लिए शास्ति** – यदि कोई व्यक्ति किसी गाय या अन्य दुधारू [2][पशु पर "फूका" या "डूम देव" नामक क्रिया या दुग्ध स्रवण को बढ़ाने के लिए कोई अन्य ऐसी क्रिया (जिसके अन्तर्गत किसी पदार्थ का अन्तःक्षेपण भी है) करेगा जो उस पशु के स्वास्थ्य के लिए हानिकर है] या अपने कब्जे में या नियंत्रणाधीन ऐसे किसी पशु पर ऐसी क्रिया करने देगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 10 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 11 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

हो सकेगी, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा, और जिस पशु पर ऐसी क्रिया की गई है वह सरकार को समपहृत हो जाएगा ।

13. **यातनाग्रस्त पशुओं को नष्ट करना** – (1) जहां कि किसी पशु का स्वामी धारा 11 के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है वहां, यदि न्यायालय का समाधान हो गया है कि पशु को जीवित रखना क्रूरता होगी तो, न्यायालय के लिए यह वैध होगा कि वह यह निदेश दे कि उस पशु को नष्ट कर दिया जाए और उस प्रयोजन के लिए उसे किसी उपयुक्त व्यक्ति को सौंप दिया जाए, तथा जिस व्यक्ति को वह पशु इस प्रकार सौंपा जाए वह, उसे अनावश्यक यातना दिए बिना, अपनी उपस्थिति में यथासंभवशीघ्र नष्ट कर देगा या करवा देगा तथा न्यायालय यह आदेश दे सकेगा कि उस पशु को नष्ट करने में जो भी उचित व्यय हुआ है वह उसके स्वामी से वैसे ही वसूल कर लिया जाए मानो वह जुर्माना हो :

परन्तु यदि स्वामी उसके लिए अपनी अनुमति नहीं देता है तो इस धारा के अधीन कोई भी आदेश, उस क्षेत्र के भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी के साक्ष्य के बिना, नहीं दिया जाएगा ।

(2) जब किसी मजिस्ट्रेट, पुलिस आयुक्त या जिला पुलिस अधीक्षक के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी पशु के सम्बन्ध में धारा 11 के अधीन कोई अपराध किया गया है तो वह उस पशु को तुरन्त नष्ट किए जाने का निदेश दे सकेगा यदि उसे जीवित रखना उसकी राय में क्रूरतापूर्ण हो ।

(3) कांस्टेबल की पंक्ति से ऊपर का कोई पुलिस अधिकारी या राज्य सरकार द्‌वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जो किसी पशु को इतना रुग्ण या इतने गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त या ऐसी शारीरिक स्थिति में पाता है कि उसकी राय में उसे क्रूरता के बिना हटाया नहीं जा सकता है तो वह, यदि स्वामी अनुपस्थित है या उस पशु को नष्ट करने के लिए अपनी सहमति देने से इनकार करता है तो, तुरन्त उस क्षेत्र के भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी को, जिसमें वह पशु पाया गया हो, आहूत कर सकेगा और यदि पशु चिकित्सा अधिकारी यह प्रमाणित करता है कि वह पशु घातक रूप से क्षतिग्रस्त है या इतने गंभीर रूप से

क्षतिग्रस्त है या ऐसी शारीरिक स्थिति में है कि उसे जीवित रखना क्रूरतापूर्ण होगा तो, यथास्थिति, वह पुलिस अधिकारी या प्राधिकृत व्यक्ति, मजिस्ट्रेट के आदेश प्राप्त करने के पश्चात्, उस [1][क्षतिग्रस्त पशु को ऐसी रीति से, जो विहित की जाए, नष्ट कर सकेगा या नष्ट करा सकेगा ।]

(4) पशु को नष्ट करने के संबंध में मजिस्ट्रेट के किसी आदेश के खिलाफ कोई भी अपील नहीं होगी ।

अध्याय 4

पशुओं पर प्रयोग

14. **पशुओं पर प्रयोग** – इस अधिनियम की कोई भी बात शरीर-क्रियात्मक ज्ञान या ऐसे ज्ञान को, जो जीवन को बचाने या दीर्घ बनाने के लिए, या यातना न्यून करने या मनुष्यों, पशुओं अथवा पौधों को लगने वाले किसी रोग की रोकथाम के लिए उपयोगी हो, नई खोज द्वारा, समुन्नत करने के प्रयोजनार्थ प्रयोगों के किए जाने को (जिनके अन्तर्गत पशुओं पर शल्य-क्रिया सम्बन्धी प्रयोग भी हैं) विधिविरुद्ध नहीं बनाएगी ।

15. **पशुओं पर प्रयोगों संबंधी नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए समिति** – (1) यदि बोर्ड की सलाह पर किसी भी समय केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि पशुओं पर प्रयोगों के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए ऐसा करना आवश्यक है तो, वह, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक समिति का गठन कर सकेगी जिसमें उतने पदधारी और अशासकीय व्यक्ति होंगे जितने वह उस समिति में नियुक्त करना ठीक समझे ।

(2) केन्द्रीय सरकार समिति के सदस्यों में से एक को उसका अध्यक्ष नामनिर्दिष्ट करेगी ।

(3) समिति को अपने कर्तव्यों के पालन के सम्बन्ध में अपनी प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(4) समिति की निधियों में, उसे सरकार द्वारा समय-समय पर

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 12 द्वारा प्रतिस्थापित ।

दिए गए अंशदान, संदान, अभिदान, वसीयत-सम्पत्ति, दान और इसी प्रकार की प्राप्तियां सम्मिलित होंगी ।

[1][15क. **उपसमितियां** – (1) समिति की किसी शक्ति का प्रयोग करने या उसके किसी कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए या किसी ऐसे विषय पर, जो समिति निर्देशित करे, जांच करने या रिपोर्ट और सलाह देने के लिए समिति उतनी उपसमितियां गठित कर सकेगी जितनी वह उचित समझे ।

(2) उपसमिति केवल समिति के सदस्यों से गठित होगी ।]

16. **समिति का कर्मचारिवृन्द** – केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण के अधीन रहते हुए, समिति अपनी शक्तियों का प्रयोग तथा अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के निमित्त उतने अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों को नियुक्त कर सकेगी जितने आवश्यक हों और ऐसे अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के पारिश्रमिक तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें अवधारित कर सकेगी ।

17. **समिति के कर्तव्य और पशुओं पर किए जाने वाले प्रयोगों के सम्बन्ध में नियम बनाने की समिति की शक्ति** – (1) समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए कि पशुओं पर किए जाने वाले प्रयोगों से पूर्व, उनके दौरान, या उनके पश्चात् उन्हें अनावश्यक पीड़ा या यातना न पहुंचे ऐसे सभी उपाय करे, जो आवश्यक हों, और उस प्रयोजन के लिए वह भारत के राजपत्र में अधिसूचना द्वारा और पूर्व प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए, ऐसे प्रयोगों के किए जाने के सम्बन्ध में ऐसे नियम बना सकेगी जिन्हें वह ठीक समझे ।

[2][(1क) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित विषयों के लिए उपबन्ध कर सकेंगे, अर्थात् :–

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 13 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 14 द्वारा अंतःस्थापित ।

(क) पशुओं पर प्रयोग करने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं का रजिस्ट्रीकरण ;

(ख) वे रिपोर्टें और अन्य जानकारी जो पशुओं पर प्रयोग करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा समिति को भेजी जाएंगी ।]

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, समिति द्वारा बनाए गए नियम इस प्रकार के होंगे जो निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति सुनिश्चित कर सकें, अर्थात् :–

(क) उन दशाओं में, जिनमें प्रयोग किसी संस्था द्वारा किए जाएं, उनकी जिम्मेदारी उस संस्था के भारसाधक व्यक्ति की होगी, और उन दशाओं में, जिनमें प्रयोग संस्था के बाहर किन्हीं व्यक्तियों द्वारा किए जाएं, वे व्यक्ति उस निमित्त अर्हित हों और प्रयोग उनकी पूरी-पूरी जिम्मेदारी पर किए जाएं ;

(ख) प्रयोग सम्यक् सतर्कता और सहृदयता के साथ किए जाएं और शल्य-क्रिया वाले प्रयोग यथासंभव पर्याप्त शक्ति के संज्ञाहारी के प्रभावाधीन किए जाएं जिससे कि पशुओं को पीड़ा का अनुभव न हो ;

(ग) ऐसे पशु, जो संज्ञाहारियों के प्रभावाधीन प्रयोग के क्रम में इतने क्षत हो जाएं कि उनके ठीक होने के पश्चात् भी उन्हें गंभीर यातना बनी रहे, जब वह संज्ञाहीन ही हों तभी, साधारणतया नष्ट कर दिए जाएं ;

(घ) जहां कहीं, उदाहरणार्थ चिकित्सा संबंधी स्कूलों, अस्पतालों, कालेजों जैसे स्थानों में, पशुओं पर प्रयोगों पर परिवर्जन कर सकना संभव हो वहां उस दशा में ऐसा ही किया जाए जब पुस्तकें, माडल, फिल्म और अन्य वैसी ही शिक्षण-प्रयुक्तियां समान रूप से पर्याप्त हों ;

(ङ) बड़े-बड़े पशुओं पर प्रयोग न किए जाएं यदि गिनी-पिग, शशक, मेंढक और चूहे जैसे छोटे-छोटे पशुओं पर प्रयोग करके वही परिणाम प्राप्त करना संभव हो ;

(च) जहां तक संभव हो, हस्तकौशल प्राप्त करने के प्रयोजन

के लिए ही प्रयोग न किए जाएं ;

(छ) प्रयोग किए जाने के लिए आशयित पशुओं की, प्रयोगों से पूर्व और पश्चात् दोनों ही समय समुचित रूप से देख-रेख रखी जाए ;

(ज) पशुओं पर किए गए प्रयोगों के संबंध में समुचित अभिलेख रखे जाएं ।

(3) इस धारा के अधीन नियम बनाने में, समिति का मार्गदर्शन ऐसे निदेशों द्वारा होगा, जो केन्द्रीय सरकार (उन उद्देश्यों के अनुरूप जिनके लिए समिति स्थापित की गई है) उसे दे और केन्द्रीय सरकार को ऐसे निदेश देने के लिए इसके द्वारा प्राधिकृत किया जाता है ।

(4) समिति द्वारा बनाए गए सभी नियम संस्थाओं के बाहर प्रयोग करने वाले सभी व्यक्तियों तथा ऐसे व्यक्तियों पर आबद्धकर होंगे जो उन संस्थाओं के भारसाधक हैं जिनमें प्रयोग किए जाते हैं ।

18. **प्रवेश तथा निरीक्षण करने की शक्ति** – यह सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ कि समिति द्वारा बनाए गए नियमों का अनुपालन किया जाता है समिति अपने अधिकारियों में से किसी को या किसी अन्य व्यक्ति को लिखित रूप में इस बात के लिए प्राधिकृत कर सकेगी कि वह किसी संस्था या स्थान का, जहां प्रयोग किए जा रहे हों, निरीक्षण करे और ऐसे निरीक्षण के परिणाम की उसे रिपोर्ट दे, और इस प्रकार प्राधिकृत अधिकारी या व्यक्ति, –

(क) ऐसे किसी समय, जिसे वह उचित समझता है, किसी ऐसी संस्था या स्थान में, जहां पशुओं पर प्रयोग किए जा रहे हों, प्रवेश कर सकेगा और उसका निरीक्षण कर सकेगा ; और

(ख) किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह पशुओं पर किए गए प्रयोगों के बारे में अपने द्वारा रखा गया कोई अभिलेख प्रस्तुत करे ।

19. **पशुओं पर प्रयोगों का प्रतिषेध करने की शक्ति** – यदि धारा 18 के अधीन किए गए किसी निरीक्षण के परिणामस्वरूप, समिति को दी गई किसी अधिकारी या अन्य व्यक्ति की रिपोर्ट पर, या अन्यथा, उस समिति का यह समाधान हो जाता है कि धारा 17 के अधीन उसके

द्‌वारा बनाए गए नियमों का किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था द्‌वारा अनुपालन नहीं किया जा रहा है जो पशुओं पर प्रयोग कर रहा है तो समिति, उस व्यक्ति या संस्था को उस मामले में सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, आदेश द्‌वारा, उस व्यक्ति या संस्था को ऐसा कोई प्रयोग करने के लिए, या तो किसी विनिर्दिष्ट अवधि तक के लिए या अनिश्चित काल के लिए प्रतिषिद्ध कर सकेगी, अथवा उस व्यक्ति या संस्था को, ऐसी विशेष शर्तों के अधीन रहते हुए, जिन्हें अधिरोपित करना समिति ठीक समझे, ऐसे प्रयोग करने की अनुज्ञा दे सकेगी ।

20. **शास्तियां** – यदि कोई व्यक्ति, –

(क) धारा 19 के अधीन समिति द्‌वारा किए गए किसी आदेश का उल्लंघन करेगा ; अथवा

(ख) उस धारा के अधीन समिति द्‌वारा अधिरोपित किसी शर्त को भंग करेगा,

तो वह जुर्माने से, जो दो सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा और यदि वह उल्लंघन या शर्त-भंग किसी संस्था में हुआ है तो उस संस्था के भारसाधक व्यक्ति को उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्‌नुसार वह दंडनीय होगा ।

अध्याय 5

करतब दिखाने वाले पशु

21. **"प्रदर्शन" और "प्रशिक्षण" की परिभाषा** – इस अध्याय में, "प्रदर्शन" से किसी ऐसे खेल-तमाशे में प्रदर्शन अभिप्रेत है जिसमें टिकट बेच करके जनता को प्रवेश दिया जाता है, और "प्रशिक्षण" से ऐसे किसी प्रदर्शन के प्रयोजनार्थ प्रशिक्षण अभिप्रेत है, और "प्रदर्शक" तथा "प्रशिक्षक" पदों के क्रमशः तत्सम अर्थ हैं ।

22. **करतब दिखाने वाले पशुओं के प्रदर्शन और प्रशिक्षण पर निर्बंधन** – कोई भी व्यक्ति –

(i) करतब दिखाने वाले किसी पशु का तब तक प्रदर्शन नहीं करेगा या उसे प्रशिक्षण नहीं देगा जब तक कि वह व्यक्ति इस

अध्याय के उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत न हो ;

(ii) किसी ऐसे पशु का, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे पशु के रूप में विनिर्दिष्ट करे जिसे करतब दिखाने वाले पशु के रूप में न तो प्रदर्शित किया जाएगा और न ही प्रशिक्षित किया जाएगा, करतब दिखाने वाले पशु के रूप में न तो प्रदर्शन करेगा और न उसे प्रशिक्षण देगा ।

23. **रजिस्ट्रीकरण की प्रक्रिया** – (1) करतब दिखाने वाले किसी पशु का प्रदर्शन करने या उसे प्रशिक्षण देने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को, जब तक कि वह ऐसा व्यक्ति न हो जो इस अध्याय के अधीन न्यायायल द्वारा किए गए किसी आदेश के आधार पर रजिस्ट्रीकृत होने का हकदार न हो, विहित प्राधिकारी को विहित रूप में आवेदन किए जाने तथा विहित फीस अदा किए जाने पर, इस अधिनियम के अधीन रजिस्टर किया जाएगा ।

(2) इस अध्याय के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन में, पशुओं के बारे में और जिस करतब में पशुओं का प्रदर्शन किया जाना है या जिस करतब के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया जाना है उसकी साधारण प्रकृति के बारे में, ऐसी विशिष्टियां दी जाएंगी जो विहित की जाएं, और इस प्रकार दी गई विशिष्टियां विहित प्राधिकारी द्वारा रखे गए रजिस्टर में दर्ज की जाएंगी ।

(3) विहित प्राधिकारी प्रत्येक व्यक्ति को, जिसका नाम उसके द्वारा रखे गए रजिस्टर में दर्ज है, रजिस्ट्रीकरण का विहित प्ररूप में एक प्रमाणपत्र देगा जिसमें रजिस्टर में दर्ज विशिष्टियां होंगी ।

(4) इस अध्याय के अधीन रखा गया प्रत्येक रजिस्टर, विहित फीस अदा करने पर, निरीक्षण के लिए हर उचित समय पर उपलब्ध रहेगा और विहित फीस अदा करने पर कोई भी व्यक्ति उसकी प्रतियां पाने तथा उसमें से उद्धरण लेने का हकदार होगा ।

(5) कोई भी व्यक्ति, जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज है, किसी न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश के

उपबंधों के अधीन रहते हुए, अपने बारे में रजिस्टर में दर्ज प्रविष्टियां परिवर्तित कराने का, उस प्रयोजन के लिए आवेदन करने पर, हकदार होगा, और जहां ऐसी कोई विशिष्टियां इस प्रकार परिवर्तित की जाती हैं वहां विद्यमान प्रमाणपत्र रद्द कर दिया जाएगा और नया प्रमाणपत्र जारी किया जाएगा ।

24. **करतब दिखाने वाले पशुओं के प्रदर्शन के प्रशिक्षण को प्रतिषिद्ध या निर्बन्धित करने की न्यायालय की शक्ति** – (1) जहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा, या धारा 23 में निर्दिष्ट विहित प्राधिकारी द्वारा लिखित रूप में प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा, किए गए किसी परिवाद पर किसी मजिस्ट्रेट के समाधानप्रद रूप में यह साबित कर दिया जाता है कि करतब दिखाने वाले किसी पशु का प्रशिक्षण या प्रदर्शन अनावश्यक पीड़ा या यातना के साथ किया गया है और उसे प्रतिषिद्ध या कुछ शर्तों पर ही अनुज्ञात किया जाना चाहिए वहां, न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जिसके बारे में परिवाद किया गया है, प्रशिक्षण या प्रदर्शन का प्रतिषेध करते हुए, या उसके संबंध में ऐसी शर्तें अधिरोपित करते हुए, आदेश दे सकेगा जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं ।

(2) कोई भी न्यायालय, जिसके द्वारा इस धारा के अधीन कोई आदेश किया जाता है, उस आदेश के किए जाने के पश्चात् यथाशक्यशीघ्र उसकी एक प्रति उस विहित प्राधिकारी को भिजवाएगा जिसके द्वारा वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है, रजिस्टर किया गया है, और आदेश की विशिष्टियां उस व्यक्ति द्वारा धारित प्रमाणपत्र पर पृष्ठांकित कराएगा और वह व्यक्ति, पृष्ठांकन के प्रयोजनों के लिए न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र के इस प्रकार अपेक्षित किए जाने पर, प्रमाणपत्र पेश करेगा, तथा वह विहित प्राधिकारी, जिसे इस धारा के अधीन आदेश की कोई प्रति भेजी जाए, उस रजिस्टर में आदेश की विशिष्टियां दर्ज करेगा ।

25. **परिसर में प्रवेश करने की शक्ति** – (1) धारा 23 में निर्दिष्ट विहित प्राधिकारी द्वारा लिखित रूप में प्राधिकृत कोई भी व्यक्ति और कोई पुलिस अधिकारी, जो उप-निरीक्षक से नीचे की पंक्ति का न हो, –

(क) किसी भी ऐसे परिसर में, जिसमें करतब दिखाने वाले पशुओं को प्रशिक्षित या प्रदर्शित किया जाता हो अथवा उन्हें

प्रशिक्षण या प्रदर्शन के लिए रखा जाता हो, किसी भी उचित समय पर प्रवेश कर सकेगा और उसका तथा उसमें पाए गए ऐसे किसी भी पशु का निरीक्षण कर सकेगा ; और

(ख) किसी भी व्यक्ति से, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण हो कि वह करतब दिखाने वाले पशुओं का प्रशिक्षक या प्रदर्शक है, यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह अपना रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र पेश करे ।

(2) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई भी व्यक्ति या पुलिस अधिकारी, करतब दिखाने वाले पशुओं के सार्वजनिक तमाशे के दौरान, स्टेज पर या उसके पीछे जाने के लिए, इस धारा के अधीन अधिकृत नहीं होगा ।

26. **अपराध** – यदि कोई व्यक्ति, –

(क) जो इस अध्याय के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं है, करतब दिखाने वाले किसी पशु का प्रदर्शन करेगा या उसे प्रशिक्षण देगा ; अथवा

(ख) इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत होते हुए, करतब दिखाने वाले किसी ऐसे पशु का, जिसकी बाबत, या ऐसी रीति से, जिसकी बाबत, वह रजिस्ट्रीकृत नहीं है, प्रदर्शन करेगा या उसे प्रशिक्षण देगा ; अथवा

(ग) किसी ऐसे पशु का, करतब दिखाने वाले पशु के रूप में प्रदर्शन करेगा या उसे प्रशिक्षण देगा जो धारा 22 के खंड (ii) के अधीन जारी की गई अधिसूचना के कारण उक्त प्रयोजन के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाना है ; अथवा

(घ) प्रवेश और निरीक्षण के बारे में इस अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने में, धारा 25 में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति या पुलिस अधिकारी को बाधा पहुंचाएगा या जानबूझकर टालमटोल करेगा ; अथवा

(ङ) ऐसे निरीक्षण से बचने की दृष्टि से किसी पशु को

छिपाएगा ; अथवा

(च) इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत व्यक्ति होते हुए, इस अधिनियम के अधीन अपना प्रमाणपत्र पेश करने के लिए इस अधिनियम के अनुसरण में सम्यक् रूप में अपेक्षित किए जाने पर, बिना उचित कारण के वैसा करने में असफल रहेगा ; अथवा

(छ) जब कि वह इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत होने का हकदार नहीं है तब ऐसे रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन देगा,

तो वह दोषसिद्ध किए जाने पर जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

27. **छूट** – इस अध्याय की कोई भी बात, –

(क) वास्तविक सैनिक या पुलिस प्रयोजनों के लिए पशुओं के प्रशिक्षण को, अथवा इस प्रकार प्रशिक्षित किन्हीं पशुओं के प्रदर्शन को, लागू नहीं होगी ; अथवा

(ख) किसी चिड़ियाघर में या किसी ऐसी सोसाइटी या संगम द्‌वारा रखे गए पशुओं को लागू नहीं होगी जिसका मुख्य उद्देश्य शैक्षणिक या वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए पशुओं का प्रदर्शन करना है ।

अध्याय 6

प्रकीर्ण

28. **धर्म द्‌वारा विहित वध की रीति के संबंध में व्यावृत्ति** – इस अधिनियम की कोई भी बात किसी समुदाय के धर्म द्‌वारा अपेक्षित रीति से किसी पशु के वध को अपराध नहीं बनाएगी ।

29. **सिद्धदोष व्यक्ति को, पशु के स्वामित्व से वंचित करने की न्यायालय की शक्ति** – (1) यदि यह पाया जाता है कि किसी पशु का स्वामी इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का दोषी है तो न्यायालय, उस अपराध के लिए उसे सिद्धदोष ठहराए जाने पर, यदि

न्यायालय ठीक समझे तो, किसी अन्य दंड के साथ-साथ यह आदेश भी कर सकेगा कि जिस पशु की बाबत अपराध किया गया था वह सरकार के प्रति समपहृत कर लिया जाए और इसके अतिरिक्त, पशु के व्ययन के संबंध में ऐसा आदेश भी कर सकेगा जिसे वह परिस्थितियों में ठीक समझे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई भी आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि इस अधिनियम के अधीन किसी पूर्वतन दोषसिद्धि के बारे में साक्ष्य द्वारा अथवा स्वामी के चरित्र के बारे में या अन्यथा पशु के प्रति बर्ताव के बारे में यह दर्शित नहीं कर दिया जाता कि यदि उस पशु को स्वामी के पास छोड़ दिया जाएगा तो उसके प्रति और भी अधिक क्रूरता होना संभाव्य है ।

(3) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय यह आदेश भी दे सकेगा कि इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया व्यक्ति किसी भी किस्म के पशु को, या आदेश में विनिर्दिष्ट किसी प्रकार या नस्ल के पशु को, जैसा भी न्यायालय ठीक समझे, अभिरक्षा में रखने से स्थायी रूप से अथवा ऐसी अवधि के दौरान, जो आदेश द्वारा नियत की जाए, प्रतिषिद्ध होगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन कोई भी आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक –

(क) किसी पूर्वतन दोषसिद्धि के बारे में साक्ष्य द्वारा अथवा उक्त व्यक्ति के चरित्र के बारे में, या अन्यथा उस पशु के प्रति बर्ताव के बारे में, जिसके संबंध में उसे दोषसिद्ध किया गया है, यह दर्शित न किया गया हो कि उक्त व्यक्ति की अभिरक्षा में के पशु के प्रति क्रूरता की जानी संभाव्य है ;

(ख) उस परिवाद में, जिस पर दोषसिद्धि हुई थी, यह उल्लेख न किया गया हो कि परिवादी का आशय यह अनुरोध करना है कि अपराधी के दोषसिद्ध किए जाने पर उसे यथापूर्वोक्त आदेश दिए जाएं ; और

(ग) वह अपराध, जिसके लिए दोषसिद्धि हुई थी, ऐसे क्षेत्र में

न किया गया हो जिसमें किसी ऐसे पशु को रखने के लिए, जिसकी बाबत दोषसिद्धि हुई थी, तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन अनुज्ञप्ति लेना आवश्यक है ।

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी भी व्यक्ति को, जिसकी बाबत उपधारा (3) के अधीन कोई आदेश किया गया है, उस आदेश के उपबंधों के प्रतिकूल किसी पशु को अपनी अभिरक्षा में रखने का अधिकार नहीं होगा और यदि वह आदेश के उपबंधों का उल्लंघन करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक सौ रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(6) कोई भी न्यायालय, जिसने उपधारा (3) के अधीन कोई आदेश दिया है, स्वप्रेरणा से या इस निमित्त उसे किए गए आवेदन पर, किसी भी समय उस आदेश का विखंडन या उपान्तरण कर सकेगा ।

30. **कतिपय दशाओं में दोष के बारे में उपधारणा** – यदि कोई व्यक्ति धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ) के उपबंधों के प्रतिकूल किसी बकरी, गाय या उसकी संतति का वध करने के अपराध से आरोपित किया गया है और यह साबित हो जाता है कि जिस समय अपराध का किया जाना अभिकथित है उस समय उस व्यक्ति के कब्जे में ऐसे किसी पशु की, जो इस धारा में निर्दिष्ट है, सिर की खाल के किसी भाग से संलग्न कोई खाल थी तो, जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, यह उपधारणा की जाएगी कि उस पशु का वध क्रूरता से किया गया था ।

31. **अपराधों की संज्ञेयता** – दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ), खंड (ढ), खंड (ण) या धारा 12 के अधीन दंडनीय अपराध उस संहिता के अर्थ में संज्ञेय अपराध होगा ।

32. **तलाशी और अभिग्रहण की शक्तियां** – (1) यदि किसी पुलिस अधिकारी के पास, जो उप-निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का नहीं है, या

इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि धारा 30 में निर्दिष्ट किसी ऐसे पशु के सम्बन्ध में धारा 11 की उपधारा (1) के खण्ड (ठ) के अधीन कोई अपराध किसी स्थान में किया जा रहा है या किया ही जाने वाला है या किया गया है या किसी व्यक्ति के कब्जे में ऐसे पशु की ऐसी खाल है जिससे सिर की खाल का कोई भाग संलग्न है तो वह ऐसे स्थान या किसी भी स्थान में, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वहां ऐसी कोई खाल है, प्रवेश कर सकेगा और तलाशी ले सकेगा और ऐसी कोई खाल या वस्तु या चीज, जो ऐसा अपराध करने में प्रयुक्त की गई हो या की जानी आशयित हो, अभिगृहीत कर सकेगा ।

(2) यदि किसी पुलिस अधिकारी के पास, जो उप-निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का नहीं है, या इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसकी अधिकारिता की सीमाओं के भीतर किसी पशु पर फूका या [1][डूम देव या धारा 12 में निर्दिष्ट प्रकृति की कोई क्रिया की गई है या की जा रही है] तो वह उस स्थान में प्रवेश कर सकेगा जिसमें उसे उस पशु के होने का विश्वास है और वह उस पशु को अभिगृहीत कर सकेगा और उसे उस क्षेत्र के, जिसमें वह पशु अभिगृहीत किया गया है, भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी के पास परीक्षा के लिए ले जाएगा ।

33. **तलाशी वारण्ट** – (1) यदि किसी प्रथम या द्वितीय वर्ग के मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त या जिला पुलिस अधीक्षक के पास, लिखित इत्तिला पर और ऐसी जांच के पश्चात् जैसी वह ठीक समझे, यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी स्थान में इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है या किया ही जाने वाला है तो वह या तो स्वयं उस स्थान में प्रवेश करके तलाशी ले सकेगा या अपने अधिपत्र द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को, जो उप-निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, उस स्थान में प्रवेश करने और तलाशी लेने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 15 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) तलाशियों से सम्बन्धित दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के उपबन्ध, जहां तक वे लागू किए जा सकते हैं, इस अधिनियम के अधीन तलाशियों को लागू किए जाएंगे ।

34. **परीक्षा के लिए अभिग्रहण की सामान्य शक्ति** – कांस्टेबल की पंक्ति से ऊपर का कोई पुलिस अधिकारी या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई व्यक्ति, जिसके पास यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी पशु के संबंध में इस अधिनियम के विरुद्ध कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है, यदि उसकी राय में परिस्थितियों से ऐसा अपेक्षित है तो, उस पशु को अभिगृहीत कर सकेगा और उसे किसी निकटवर्ती मजिस्ट्रेट द्वारा या किसी ऐसे पशु चिकित्सा अधिकारी जो विहित किया जाए, परीक्षा के लिए ले जाएगा; और ऐसा पुलिस अधिकारी या प्राधिकृत व्यक्ति उस पशु को अभिगृहीत करते समय उसके भारसाधक व्यक्ति से परीक्षास्थल तक उसके साथ चलने की अपेक्षा कर सकेगा ।

35. **पशुओं का उपचार और देख-रेख** – (1) राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, ऐसे पशुओं के उपचार और उनकी देख-रेख के लिए, जिनके सम्बन्ध में इस अधिनियम के विरुद्ध अपराध किए गए हैं रुग्णावास स्थापित कर सकेगी और मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने के समय तक के लिए किसी पशु का उसमें निरोध प्राधिकृत कर सकेगी ।

(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष इस अधिनियम के विरुद्ध किए गए अपराध के लिए अभियोजन संस्थित किया गया है, यह निदेश दे सकेगा कि सम्बद्ध पशु की तब तक रुग्णावास में देख-रेख और उपचार किया जाए जब तक वह अपना सामान्य कार्य करने योग्य न हो जाए या अन्यथा उन्मोचन के योग्य न हो जाए, या यह निदेश दे सकेगा कि वह पिंजरापोल में भेज दिया जाए, या यदि उस क्षेत्र का, जिसमें वह पशु पाया जाए, भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी या ऐसा अन्य पशु चिकित्सा अधिकारी, जिसे इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया जाए, यह प्रमाणित करता है कि वह लाइलाज है या उसे क्रूरता किए बिना हटाया नहीं जा सकता तो उसे

नष्ट कर दिया जाए ।

(3) किसी रुग्णावास में उपचार और देख-रेख के लिए भेजा गया पशु उस स्थान से, जब तक कि मजिस्ट्रेट यह निदेश नहीं देता कि उसे पिंजरापोल में भेज दिया जाए या नष्ट कर दिया जाए, उस क्षेत्र का, जिसमें रुग्णावास स्थित है, भारसाधक पशु चिकित्सा अधिकारी या अन्य ऐसा पशु चिकित्सा अधिकारी, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया जाए, यह प्रमाणपत्र नहीं दे देता कि वह उन्मोचित किए जाने के योग्य है, छोड़ा नहीं जाएगा ।

(4) किसी पशु को किसी रुग्णावास या पिंजरापोल तक ले जाने का, और रुग्णावास में उसके पोषण और उपचार का खर्च पशु के स्वामी द्वारा, जिला मजिस्ट्रेट या प्रेसिडेंसी नगरों में पुलिस आयुक्त द्वारा विहित की जाने वाली दरों के मापमान के अनुसार संदेय होगा :

परन्तु उस पशु के उपचार के लिए कोई भी प्रभार संदेय नहीं होगा, यदि पशु के स्वामी की निर्धनता के कारण मजिस्ट्रेट वैसा आदेश दे ।

(5) उपधारा (4) के अधीन किसी पशु के स्वामी द्वारा संदेय रकम उसी रीति से वसूल की जा सकेगी जिस रीति से भू-राजस्व की बकाया वसूल की जाती है ।

(6) यदि स्वामी उतने समय के भीतर, जितना मजिस्ट्रेट विहित करे, उस पशु को हटाने से इनकार करता है या उसकी उपेक्षा करता है तो मजिस्ट्रेट निदेश दे सकेगा कि वह पशु बेच दिया जाए और बिक्री से प्राप्त धन को उस खर्च का संदाय करने में उपयोजित किया जाए ।

(7) बिक्री से प्राप्त ऐसे धन का अतिशेष, यदि कोई हो, बिक्री की तारीख से दो मास के भीतर स्वामी द्वारा आवेदन किए जाने पर, उसे दे दिया जाएगा ।

36. **अधियोजनों के लिए परिसीमा** – इस अधिनियम के विरुद्ध किसी अपराध के लिए अभियोजन उस अपराध के किए जाने की तारीख से तीन मास के अवसान के पश्चात् संस्थित नहीं किया जाएगा ।

37. **शक्तियों का प्रत्यायोजन** – केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह निदेश दे सकेगी कि इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कोई भी शक्तियां, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जिन्हें अधिरोपित करना वह ठीक समझे, किसी राज्य सरकार द्वारा भी प्रयोक्तव्य होंगी ।

38. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, और पूर्व प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित सभी या किन्हीं भी विषयों का उपबंध करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् :–

(क) बोर्ड के सदस्यों की सेवा [1][की शर्तें], उन्हें संदेय भत्ते और वह रीति जिससे वे अपनी शक्तियों का प्रयोग और अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकेंगे ;

[2][(कक) वह रीति जिससे नगर निगमों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों का धारा 5 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) के अधीन निर्वाचन किया जाना है ;]

(ख) किसी पशु द्वारा ले जाया या ढोया जाने वाला अधिकतम भार (जिसमें उस पर सवारी करने वालों का भार भी सम्मिलित है) ;

(ग) पशुओं के अतिभरण की रोकथाम के लिए पालन की जाने वाली शर्तें ;

(घ) वह अवधि जिसके दौरान और वे घंटे, जिनके बीच किसी भी वर्ग के पशुओं को भार ढोने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाएगा ;

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 16 द्वारा "के निबन्धन और शर्तें" शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

(ङ) किसी लगाम के दहाने या जुए का ऐसा प्रयोग प्रतिषिद्ध करना जिससे कि पशुओं के प्रति क्रूरता होती हो ;

[1][(ङक) धारा 11 की उपधारा (3) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट आवारा कुत्तों के नष्ट किए जाने की अन्य पद्धतियां ;

(ङख) वे पद्धतियां जिनसे ऐसे पशु को, जिसे बिना क्रूरता के नहीं हटाया जा सकता है, धारा 13 की उपधारा (3) के अधीन नष्ट किया जा सकेगा ;]

(च) नालबन्दी का कारबार करने वाले व्यक्तियों के लिए अनुज्ञप्ति और रजिस्ट्रीकरण की ऐसे प्राधिकारी द्वारा अपेक्षा करना जो विहित किया जाए, और उस प्रयोजन के लिए फीस उद्गृहीत करना ;

(छ) बिक्री या निर्यात के प्रयोजनों के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए पशुओं को पकड़ने के सम्बन्ध में बरती जाने वाली पूर्वावधानी, तथा वे विभिन्न उपकरण और युक्तियां, जिनका ही उस प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा सकेगा ; और इस प्रकार पकड़े जाने के लिए अनुज्ञप्ति तथा ऐसी अनुज्ञप्तियों के लिए फीस का उग्रहण ;

(ज) रेल, सड़क, अन्तर्देशीय जलमार्ग, समुद्र या वायु द्वारा पशुओं के परिवहन के सम्बन्ध में बरती जाने वाली पूर्वावधानी और वह रीति जिससे तथा वे पिंजरे या अन्य पात्र, जिनमें उनका इस प्रकार परिवहन किया जा सकेगा ;

(झ) उन परिसरों के स्वामियों या भारसाधक व्यक्तियों से, जिनमें पशु रखे जाते हैं या दुहे जाते हैं, ऐसे परिसरों को रजिस्टर करवाने की, परिसरों की चहारदीवारियों या चारों ओर के वातावरण के सम्बन्ध में निर्धारित शर्तों का अनुपालन करने की, यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या उनमें इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

है उनका निरीक्षण करने देने की, और ऐसे परिसरों में इस अधिनियम की धारा 12 की प्रतियां उस भाषा या उन भाषाओं में, जो उस क्षेत्र में सामान्यतः समझी जाती हों, प्रदर्शित करने की, अपेक्षा करना ;

(ञ) वह प्ररूप जिसमें अध्याय 5 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन किए जा सकेंगे, वे विशिष्टियां जो उसमें अंतर्विष्ट होंगी, ऐसे रजिस्ट्रीकरण के लिए संदेय फीस और वे प्राधिकारी जिन्हें ऐसे आवेदन किए जा सकेंगे ;

[1][(ञक) वे फीसें जो उन व्यक्तियों या संस्थाओं के रजिस्ट्रीकरण के लिए, जो पशुओं पर प्रयोग कर रहे हैं, या किसी अन्य प्रयोजन के लिए, धारा 15 के अधीन गठित समिति द्वारा प्रभारित की जा सकेंगी ;]

(ट) वे प्रयोजन, जिनके लिए इस अधिनियम के अधीन वसूल किए गए जुर्माने उपयोजित किए जा सकेंगे, और इन प्रयोजनों के अन्तर्गत रुग्णावासों, पिंजरापोलों और पशु चिकित्सा के अस्पतालों का बनाए रखना जैसे प्रयोजन भी हैं ;

(ठ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना है या विहित किया जाए ।

(3) यदि कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करेगा या उल्लंघन का दुष्प्रेरण करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक सौ रुपए तक का हो सकेगा, या कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।

[2]* * * *

[3][38क. **नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना** – केन्द्रीय सरकार द्वारा या धारा 15 के अधीन गठित समिति द्वारा

---

[1] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

[2] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 16 द्वारा उपधारा (4) का लोप किया गया ।

[3] 1982 के अधिनियम सं. 26 की धारा 17 द्वारा अंतःस्थापित ।

बनाया गया प्रत्येक नियम और बोर्ड द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन, यथास्थिति, उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाए, तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि, यथास्थिति, वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

39. **धारा 34 के अधीन प्राधिकृत व्यक्तियों का लोक सेवक होना** – धारा 34 के अधीन राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत प्रत्येक व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझा जाएगा ।

40. **संरक्षण** – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही किसी व्यक्ति के विरुद्ध, जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक है या समझा जाता है, न होगी ।

41. **1890 के अधिनियम सं. 11 का निरसन** – जहां कि धारा 1 की उपधारा (3) के अधीन किसी अधिसूचना के अनुसरण में इस अधिनियम का कोई उपबंध किसी राज्य में प्रवृत्त होता है वहां, पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम, 1890 (1890 का 11) का ऐसा कोई उपबंध, जो इस प्रकार प्रवृत्त होने वाले उपबन्ध का तत्स्थानी है, तदुपरि निरसित हो जाएगा ।

Cover iii

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

Cover iv

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in